जय करुणाकर जय गजरक्षक जय रामानुज कृष्ण हरे,
जय मधुसूदन दैत्यविदारण विश्वप्रमोदन विश्वपते ।
जय भवतापनिवारण ईश्वर जय वामन जय भक्तिरते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥२॥

जय परमामृतमङ्गलदायक पङ्कजलोचन विश्वधृते,
जयजय राम सुदर्शन, रक्षक जय विश्वम्भर भद्रपते ।
जय नारायण विश्वपरायण सकलसुखालय शान्तिमते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥३॥

जय अविजय जय शेषनिवासक मुनिजनसाधन साधुपते,
जय गोपीजनवल्लभ व्यापक जय कमठक जय वेदकृते ।
जय उद्धव प्रियपोग परायण जयधरणीधर प्राणपते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥४॥

जय राधावर गोवर्द्धनधर जय नरसिंह गुणाधिपते,
जय वंशीधर जय सङ्कर्षण परममनोहर भावकृते ।
जय हृषीकेश जयाच्युत विठ्ठल मीनचतुर्भुज दीनपते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥५॥

श्रीधरस्वामि विरचितम् ।

❀ प्रार्थना ❀

(राजभक्तैर्हिन्दुभिः प्रातः प्रातः सन्ध्योत्तरं पठनीया)

धर्मो यतो जगदधीश ! ततः सदा त्वं
भूतिर्जयश्च सततं हि ततो यतस्त्वम् ।
धर्माय युद्धयति चमूर्नृपजार्जभक्ता
तस्यै जयं परमकारुणिक ! प्रयच्छ ॥

श्रीः

सूचीपत्र

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

हमारी आत्मोन्नति ।

धार्मिक भव्य हलूकर्मी जीवों को विचारना चाहिए कि हमारी आत्मोन्नति कब और कैसे होगी? क्या मनमांनी लोकप्रिय मीठी २ बातों करने से? या पय मिश्री समान मिष्टवचन सुनने से? या मनोहर मनोहर रूप देखने से? या अतिश्रेष्ठ सुगंध सूंघने से? या अमृतसमान भोजन करने से? या मनइच्छित वस्त्राभर्ण स्त्रियादि के स्पर्श करने से? किन्तु नहीं नहीं कदापि नहीं। उपरोक्त विषय सेने सेवाने और अनुमोदने से आत्मोन्नति किञ्चित् भी नहीं होसकती है? होसकती है सिर्फ धर्म करने से? वो धर्म क्या और किसतरह कियाजाता है? इसकी पहिचान करनां अत्यावश्यक है।

इस अपार असार संसार में अनेक तरह के धर्म और अनेक तरह के धर्मावलम्बी हैं, कोई कहते हैं पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि, और आकाश, इन पांच तत्वमयी सर्व वस्तु हैं आत्मा कोई वस्तु हैही नहीं न स्वर्ग है न नर्क है और न कोई पुन्य पाप है, कोई कहते हैं नहीं नहीं पञ्चतत्वमयी शरीर है इस में अन्तरगत आत्मा अलग है सो सदा अकर्ता अभोक्ता है, कोई कहता है इस सृष्टी को परमेश्वर ने बनाई है सुख दुःखदायक परमेश्वर ही है जैसी ईश्वरकी इच्छा हो वैसा ही प्राणियों को करना होता है समस्तकार्य के करता हरता परमेश्वर ही है, कोई कहते हैं नहीं नहीं करता कराता परमेश्वर कुछ भी नहीं जैसा जैसा कर्म जीवात्मा करता कराता है उसका फल जीवात्मा को परमेश्वर देता है चोरासीलक्षजीवायोनी मे परमेश्वर ही शुभाशुभ कर्मानुसार भ्रमण कराता है, कोई कहते हैं उपरोक्त बातें सब झूठ हैं, ईश्वर कुछ करता कराता नहीं वह तो अकर्ता अभोक्ता अछेदी अभेदी अजोगी अरोगी असोगी अरूपी अजर अमर अचल अटल परमानन्द ज्योतिस्वरूप निरञ्जन निराकार है, संसारी जीव भावी वश जैसा कर्म करता है वैसा ही भोगता है, वे कर्म दो प्रकार के हैं

शुभ और अशुभ शुभकर्म को पुण्य कहते हैं और अशुभकर्म को पाप, जीवों को साता उपजाने से याने आहार पानी वस्त्र आभरणादि देने से पुण्य होता है और दुःख देने से पाप होता है पुण्य से आत्मा की उन्नति और पाप से अवनति होती है, इत्यादि अनेक तरह के मजहव और अनेक तरह के धर्म हैं, लेकिन अपनी आत्मोन्नति का उपाय तो कोई विरलेही जानते हैं जो जीव मोहमयी महा घोर निद्रा से निद्रित हैं वे अपनी आत्मोन्नति हरगिज भी नहीं करसकते हैं इसही लिये सतगुरुवोंका कहना है हे भव्यजनों ! "जागो, जागो" बहुत दिन मास व्यतीत हुए अनेक दिनों से दिवाकर भ्रमण कर दिवसोंको विताए, अपार निशाओं में निशाकर सुधामयी चन्द्रिका फैलाई, अनेक तारागणों ने प्रकाश किया, आस पास की नहीं महल्ले शहर की नहीं वहुत कोसों तक आवाज सुनाने वाली नौवतें नहीं अनन्त मेघगरजन सुन के अपारवार कायरों के दिलदुखाने वाली तोपों की आवाज सुनके भी तुम्हारी निद्रा नहीं गई ? श्री आचारांगसूत्र में कहा है, (सयं तेणं गयं धनं) याने सोया सो धन खोया, अमूल्य धन पास रखके ऐसी निद्रा में गाफिल होना भला क्या समझदारी का काम है ?

प्रियवरो ! एकाग्र चित्त करके सोचो यह निद्रा हमेशा मामूली आती है सोही है या और कोई दूसरी है ? अगर मामूली होती तो इतने शब्द सुन के हरगिज भी नहीं ठहर सकती, लेकिन इस मोह मिथ्यात्वमयी निद्राने तो एकक्षणमात्र भी तुम्हारा पीछा नहीं छोडा है, ज्ञान के नेत्रों से देखो इस निद्रा ने तुम्हारा क्या २ गुण छिपाया है, इससे तुम्हारा कितना नुक़सान होरहा है, अमूल्यरत्नागर होके ऐसे ग़ाफिल होना भला क्या समझदारी का काम है ? तुम कौन हो और अब कैसे होरहे हो ? तुम हो साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप निरञ्जन निराकार परमब्रह्म परमात्मा सुखों के भोगने वाले, अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य तुम्हारे गुण तुम्हारेही पास हैं, लेकिन इस मोह मिथ्यात्वमयी निद्रा से निद्रित होके अनन्त चतुष्टय गुणों को दबादिया है । देखो तुमने

उस अपूर्व अलौकिक शक्ति को अति निर्बल करादिई है, उस असीम शक्ति के सामने सूर्य चंद्र जल वायु आदि की अमोघ शक्तियां भी सिर उठा नहीं सकतीं, ऐसे निर्मल अनन्त शक्तिवन्त हो के शक्तिहीन होना भला कहांतक अच्छा है ?

महानुभावो ! निष्पक्ष होके विचार करो यह अवगुण एकान्त तुम्हारा ही नहीं है, यह अपलांछन तुम को ही कुशोभित नहीं किया है, इस गफलतने तुम्हारे ही को निर्धन नहीं किया है, इस अविद्याने तुम्हें हीं मूर्ख शिरोमणि पदारूढ नहीं किया है, तुम्हारे संग साथी, तुम्हारे मित्र अमित्र, नाती गोती, बहुत से ऐसे ही हो रहे हैं। इस का मुख्य कारण यह है कि अनादि काल से ही तुम और तुम्हारे संगसाथी कुगुरु भ्रष्टाचार्यों का ही संग कर रहे हो, जिससे ही जीव अधिकांस मोह मिथ्यात्वमयी निद्रासे निद्रित हो रहा है। वो कुगुरु हीनाचार्य स्वयं शुद्ध सीधा साधूपंथ पर नहीं चल के दूसरे को भी नहीं चला सकते हैं, वो यह लौकिक पूजाश्लाघार्थी जीव पंचिन्द्रियों के विषय भोग गर्भित देसना दिये बगैर नहीं रहे, वो भेषधारी दया दया मुख पुकार कर हिंसा का प्रचार करते हैं। कहैं किसैं सुनता है कौन, बतावे किसे देखता है कौन, चारों तरफ़ मिथ्यामयी महाघोरांधकार छा रहा है, पापकर्म रूपी महाकाली विकराली घटाओं से शुद्धस्वरूप सूर्य छिपाहुवा है। लेकिन ज्ञान चक्षू से देखो, सुमति से खयाल करो, वह शुद्धस्वरूप सूर्य छिप कर के भी नहीं छिपा है, सुमति से खयाल करो वोह तुम्हारी निर्मल अमित कान्ति मलीन हो के भी विकृत नहीं हुई है, वह तुम्हारा बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम कहीं नहीं गया है, सब तुम्हारे निजगुण तुम्हारे पास हैं, अगर तुम्हैं अपने गुण प्रकट करने हैं और अपनी आत्मोन्नति करनी है तो शुद्धसाधू महात्माओं की संगति करो, तथा रागद्वेष रहित वीतराग प्रभु के वचनों के अनुसार चलो, हिंसा मतकरो, संयमी हो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, ब्रह्मव्रत धारण करके निर्लोभी निष्परिग्रही हो, बस यही राह सीधी मुक्ति मिलने की है, बाकी सब ढोंग है, जहांपर पैसे और स्त्री का प्रचार है वहां कुछ आत्मोन्न-

ति का उपाय नहीं है। हे मित्र ! मत भ्रमो। संसार से मिलती झूंठी प्ररूपना करने से पंचइन्द्रियों के विषय सेने सेवाने से और दूसरे जीवों का शारीरिक सुख इच्छने से मोक्षाभिलाषी कभी नहीं हो सकते, संसार में संसारी जीवों को खाना खिलाने से आत्मकल्याण नहीं होता। पृथ्वी पानी वायु अग्नि वनस्पति के जीवों को मार कर त्रस जीवों को साता उपजाने से धर्म कदापि नहीं होता है। इस ध्वंस शील शरीर का मोह छोड कर तप अङ्गीकार करो, शरीरस्थ महा पुरुष के साथ जगदात्मा के जिस नित्य सम्बन्ध को भूलकर माया के इन्द्रजाल में फँसा हुवा है, और सङ्कल्प विकल्प के अनर्थ में सदा लोट होता है उस सम्बन्ध को ध्रुवज्ञान से प्रत्यक्ष कर उसी ज्ञान में लवलीन रहो। विचार करो हम सच्चिदानन्द आनन्दस्वरूप शुद्ध स्वरूप अजर अमर हैं, और यह शरीर अनित्य है, शरीर अलग है और हम अलग हैं, इस पुद्गलमयी शरीर का और हमारा संग अनादि काल से चलाआता है, इस की रक्षा करने से ही हम इस से अलग होके सिद्धात्मा नहीं बनते, इस कुटुम्ब और दुखी जीवों के मोहजाल में फँसकर ही मोह अनुकम्पा करने से चतुरगति संसारमयी समुद्र में गोता लगा रहे हैं। प्यारे ! तुम दुखियों को देखकर दुखी और सुखियों को देखकर सुखी क्यों होते हो, भैय्या तुम्हारे सामने तुम्हारा पिता, तुम्हारी माता, तुम्हारी स्त्री, तुम्हारे पुत्र, पौत्र, तुम्हारे नाती, गोती, तुम्हारे मित्र, अमित्र, सब चले चलते हैं, और चले जांयगे, इन किसी का मोह मत करो, निर्मोही हो के श्री वीतरागप्ररूपिता धर्मानुसार प्रवर्तो, तब दुःखों से छुटकारा पाओगे। सर्व मतों में सब ग्रन्थों में सब शास्त्रों में अहिंसा धर्म ही मुख्य है। हिंसा करना, झूंठ बोलना, चोरी करना, मैथुन सेना, और परिग्रह रखना सर्वथा वर्जित है तो जैन मत में तो उपरोक्त पञ्च आश्रवद्वार सेना सेवाना और अनुमोदना मन वचन काया करके सर्वांश निषेध है। इसलिए सद्गुरुओं का कहना है, देवानुप्रियो ! जागो २, अनादि काल से सोते सोते निजगुणों को भूलगये क्या अब सोते ही रहोगे ? आलस्य छोडो, प्रमाद तजो, पाप हरो, जियादह नहीं तो बन सके उतना ही धर्म करो,

लेकिन जिनआज्ञा बाहर के कार्य्य में धर्म कदापि मत समझो । श्रद्धा शुद्ध रखने से ही सम्यक्त्वी कहलाओगे, परन्तु आज्ञा बाहर का कार्य्य में धर्म समझने से सम्यक्त्वी कभी नहीं कहलाओगे । जैनी नाम कहा के एकेन्द्री जीवों के मारने में धर्म ऐसा कहना भला कहां तक अच्छा होगा ? धर्मार्थ हिंसा का दोष नहीं ऐसी प्ररूपना करके अहिन्सा धर्म जो तीर्थङ्करों का कहाहुवा है उसे कलङ्कित मत करो, महानुभावो, देखो देव गुरु धर्म यह तीनों अमूल्य रत्न हैं, इनकी पहिचान करो अगर अपने बुजुर्ग कुसंग से कुगुरुउपासक थे तो तुम उनकी देखां देख कुगुरुओं हिंसाधर्मियों की उपासना मत करो, जब तुम्हारी आत्मोन्नति होगी । परभव में दुर्गति न पावें अगर ऐसा विचार है तो असली नकली की पहिचान ज़रूर करो, ऊपर की चमक दमक ही देखकर मत भ्रमों, सिर्फ़ कांटा बांट बांधकर जहोरी नाम कहलाने से ही जोहरी नहीं होसकता, वैसे ही जैनी नाम धराने से ही जैनी नहीं होसकता है । दृढता रक्खो बाह्य शुची से पवित्रात्मा कभी नहीं होगी, जो यह अपनी आत्मा अनादिकाल से हिंसा आदि पंच आश्रव द्वार सेने सेवाने और भला जानने से मलीन होरही है वो आतमा इन्ही पंचआश्रव द्वार सेने सेवाने और भला जानने से कभी भी निर्मल नहीं होगी । इसही लिए कहना है प्रियवरो ! शुद्ध पञ्च महाव्रत पालने वाले मुनिराजों को मलीन कहकर पापों के पुञ्जसें आत्मा भारी मत करो। और जिन भाषित नय निक्षेप का भावार्थ यथार्थ समझो, निश्चय और व्यवहार दोनों नयों से मात्र पदार्थों का द्रव्य गुण पर्याय को यथार्थ समझो । एकान्त निश्चय या एकान्त व्यवहार नय को ही मत ताणो । एक पक्षी बने रहोगे तो समकित का लाभ नहीं पाओगे, याद रक्खो श्री वीतरागदेव प्ररूपित धर्म स्याद्वाद मयी है, परन्तु विषमवाद नहीं है, एकान्त निश्चयनयी हो के व्यवहार नय को मत उथापो, छद्मस्थ का तो व्यवहार ही शुद्ध है, इसलिए कहना है कि कुहेतु देके जिनभाषित अहिन्सा धर्म को विध्वंस मतकरो । अगर सच्चे जैनी हो तो अहिंसा धर्म प्ररूपते हुए क्यों लाजते हो और पृथिवी आदि पांच स्थावर की हिन्सा में धर्म क्यों

प्ररूपते हो, देखो द्वितिय सूत्र कृतांग के प्रथम श्रुत स्कंध के प्रथम अध्ययन के दूसरे उद्देसे इग्यारमी गाथा में कहा है ।

धम्म पन्नवणा जासा, तंतु संकंति मूढगा ।
आरम्भानि न संकंति, अविअत्ता अकोविआ ॥

टीका—शंकनीया शंकनीय विपर्यासमाह (धम्म पन्नवणेत्यादि) धर्मस्य क्षान्त्यादि दशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा (तंतिवति) तामेव शंकन्ते असद्धर्म प्ररूपणेयमित्येव मध्यवस्यंति ये पुनः पापोपादान भूताः समारंभास्ता ना शंकंते (किमिति) यतोऽव्यक्ता मुग्धा सदसद्विवेकविकलाः तथा अकोविदा, अपण्डिताः सच्छास्त्रावबोधरहिताः इति ॥ अर्थात् क्षान्त्यादि दशविधि धर्म प्ररूपणा है उसे प्ररूपते तो शंकाय याने शरमाते हैं और आरंभ में धर्म प्ररूपते शंकाय नहीं, ऐसे अव्यक्त मुग्ध अपण्डित है, इसीलिए कहना है, हे देवानुप्रियो ! जो श्री अरिहन्त भगवन्तों ने अहिंसा धर्म कहा है सोही कहना उचित है अन्यथा सर्वान्स वर्जनीय है श्री सुयगडांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथमाध्यन में खुलासा कहा है ।

तत्थ खलु भगवन्ता छज्जीवनिकाय हे उ पन्नंता तंजहा पुढवीकाए जाव तसकाए से जहा णामए मम अस्सायं दंडेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आउट्टिज्ज माणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्झिज्झ माणस्सवा ताडिज्झ माणस्स वा परियाविज्झमाणस्सवा किलाविज्झमाणस्सवा उद्दविज्झमाणस्सवा जावलो मुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयं पडिसं वेदेमि इच्चेवं जा-

णा सव्वे जीवा सव्वे भूता सव्वे पाणा सव्वेसत्ता दंडेणवा जाव कवालेणवा आ उद्दिज्झमाणावा हम्ममाणावा तज्झिज्झमाणावा ताडिज्झ माणावा परियाविज्झमाणावा किलाविज्झमाणावा उद्दावि- ज्झमाणवा जावलोमुक्खणणमायमावि हिंसा- कारगं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्झावेयव्वा णपरिघेत- व्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा । सेवेमि जय- अतिता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सामि अरिह- न्ता भगवन्ता सव्वे ते एवमाइक्खंति एवंभासंति एवंपणवेंति एवंपरूवेंति सव्वेपाणा जावसवेसत्ता णहंतव्वा णअज्झावेयव्वा णपरिघेतव्वा णप- रितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा एसधम्मे धुवे णीतीए सासए समिच्चं लोगं खेयन्नेहिं वदेंति एवंसे भिक्खू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा- तो णोदंतपक्खालणेणं दंतपक्खालेज्जा णोअं- जणं णोवमणं णोधूवणे णोतं परिआवि- एज्झा ॥ इति ॥

अर्थ-(तत्थ के०) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (भगवंता के०) भगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे (छज्जीवणिकाय हेउ के०) छजीवणीकाय कर्मबंधनां कारण (पणत्ता के०) कह्याछे ॥

(तंजहा के०) ते छकायना नाम कहेछे (पुढवीकाय जावतस- काए के०) पृथ्वी कायथी मांडीने यावत् त्रसकाय पर्यंत् छजीवनि- काय जाणवा तेहने पीडतां पीडावतां जेम दुःख उपजे तेम दृष्टांतें करी देखाडेछे (सेजहाणामए के०) ते जेमनाम एवी संभावनायें (मम के०) मुजने (अस्सायं के०) असाता उपजे शा थकी असा- ता उपजे ते कहेछे (दंडेणवा के०) दंडादिकेकरी हणताथका (अट्ठीणवा के०) अस्थिखंडे करी हाडकायें करी (मुट्ठीणवा के०) मुष्टीयें करी (लेलूणवा के०) पाषाणे करी (कवालेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्जमाणस्सवा के० आक्रोश करता थका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणाता थका (तज्जिज्जमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमा- णस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणस्सवा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणस्सवा के०) किलाम- णा करता थका (उद्दविज्जमाणस्सवा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने कायाथकी रहित करता थका (जावलोमुक्खणणमाय मवि के०) यावत् शरीर मोहथी एक रोमउखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के० हिंसानु कारण तेथी पण (दुःखं भयं पडिसं वेदेमि के०) दुःख अनेभय हुं वेदुं अनुभवुं (इच्चेवंजाण के०) ए- प्रकारे ते जाणे के (सव्वेजीवा के०) सर्व जीवते सर्व पंचेंद्रिय जीव जाणवा (सव्वेभूता के०) सर्व भूतते सर्व वनस्पति प्रमुख- ना जीव जाणवा (सव्वेपाणा के०) सर्व प्राणीते सर्व बेइन्द्रियादिक विकलेन्द्री जीव जाणवा (सव्वेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्या- दिक सर्व जीव जाणवा ते जीवोने (दंडेकरी हणतां थका (जा- वकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका (आउ- ट्टिज्जमाणावा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्जमाणावा) तर्जना करता थका (ताडिज्ज- माणावा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणावा के०) किलामणा करता थका (उद्दविज्जमाणावा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करता थका (जावलोमुक्खणणमायं मवि के०) यावत एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकार के०)

हिंसानुं कारण ते थकी पण (दुःक्खं भयं पडिसंवेदेति के०) ते जीवो दुःख अने भय एवुंज वेदे अनुभवे एटले जेवुं दुःक्ख मने वेदवुं पडे तेवूं दुःख्ख सर्व जीवने वेदवुं पडे एम सर्व जीवोने पोता सरखूं दुःक्ख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेछे (एवं नच्चा के०) एवुं जाणीने (सव्वेपाणा जावसत्ता के०) सर्व प्राणी सर्वभूत सर्वजीव अने सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नहीं (णअभ्भावेयव्वा के०) दंडादिके करी ताडवा नहीं (णपरियेतव्वा के०) बलात्कारे करी दासनी पेठें परिग्रहवा नहीं एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठें कोई कार्यने विषे प्रेरवा नहीं (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नहीं (किलवियामाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नहीं तथा काया थकी रहित करवा नहीं ॥ ४८ ॥ हवे सुधर्म स्वामी कहेछे (सेवमि के०) ए वचन जेहूं कहूं छूं ते पोतानी मतिये नथी कहेतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाछे ते देखाडेछे (जेयअतीता के०) जे अतीतकाले तीर्थंकर थया (जेयपडुप्पन्ना के०) जेवर्तमानकाले तीर्थंकर वर्तेछे (जेयआगामिस्सामि के०) जे आगामिक काले थशे ते (अरिहंत के०) अरिहन्त सत्कार योग्य (भगवंता के०) ज्ञानवंत आश्चर्यादि गुणे करी संयुक्त एवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहन्त भगवंत ते (एवमाइख्खंती के०) एम सामान्य थकी कहेछे (एवं भासंति के०) एम आर्यमागधीभाषायें भाषेछे (एवंपणवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेछे (एवंपरूपवेंति के०) एम सम्यक प्रकारे प्ररूपेछे के (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्वे प्राणीथी माडीने यावत् सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नहीं दंडादिकें करी ताडवा नहीं वली बलात्कारे दासनी पेठें परिग्रहवा नहीं शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने परितापवा नहीं उपद्रववा नहीं जीव काया थकी रहित करवा नहीं (एसधम्मेधुवे के०) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण दुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोछे तोके ध्रुव एटले निश्चल (णीतिए के०) नित्य सदा सर्वकालछे कोई काले जेनो क्षय नथी (सासये के०) शास्वतछे तेने (समिच्चं के०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने

तो के (लोगं के०) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीवनिका-यरूप लोक तेहने दुःखरूप समुद्रमांहे पड्यां देखीने (खेयन्नेहि के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां दुःखोना जाणनार एवा श्री तीर्थंकर भगवंते (पवेदेति के०) पूर्वोक्त जीव दया लक्षण धर्म भाख्यो (एवं के०) ए प्रकारे जाणीने (सेभिरकूविरते के०) ते साधू निवर्त्या (प्राणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी तेमज मृषावाद थकी तथा अदत्तादान थकी तथा मैथुन एटले कुशील थकी (जावविरतेपरिग्गाहातो के०) यावत परिग्रह थकी विरति करतो थको जेवा आचारे प्रवर्ते ते आचार कहेछे (णादंतपरकालणेणंदंतपरकालेभक्षा के०) दंत पखालने करी दंत धोवे नहीं एतावता जावजीव सुद्ध दातण न करे (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौभाग्यने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नहीं (णोव-मनं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनूं धूपन न करे (णोतंपरियाविएभक्षा के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे तेभिक्षू एटलावाना पोते आचारे नहीं ॥ ४६ ॥

अर्थात् सर्व प्राणी भूत जीव सत्वों को न मारना यह अहिंसा धर्म ध्रुव नित्य और सास्वता है अतीत काल में जो अरिहन्त भगवन्त हुए वर्तमान में जो महाविदेह क्षेत्र में हैं और अनागत काल में जो अरिहन्त होवेंगे उन्होंने यही कहा यावत् यही प्ररूपा तथा यही कहेंगे यावत् यही प्ररूपेंगे, तो अब मोक्षाभिलाषियों को विचारणा चाहिए कि किसीप्रकार भी जीव हिंसा में धर्म नहीं होसक्ता है। तब कोई कहै धर्म के वास्ते हिंसा करनेसे दोष नहीं होता है, ऐसे कहै उन्होंको विचारणा चाहिए कि तीर्थं क-रोंने धर्म ही अहिंसा में कहा है तो फिर हिंसा में धर्म कैसे हो-गा, लेकिन कुयुक्ति लगाके अनार्य लोग धर्म हेतु जीव मारने में दोष नहीं ऐसी प्ररूपना करते हैं यह श्री आचारांग सूत्र में खु-लासा कहा है, तथा अर्थ वा धर्म के लिए पृथ्वी कायादि जीवों को मारते हैं उन्हें मन्द बुद्धि दसमां अंग प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है।

इसलिए दया धर्म की प्ररूपना करने वाले सतगुरुओं का कहना है, देवानुप्रियो ! जागो जागो जागकर के दया में धर्म हिंसा में पाप जिन आज्ञा में धर्म आज्ञाबाहर पाप समझो और जीव अजीव आदि नवपदार्थों की ओळखना करो तब जैनी होके संसार प्रत: करोगे केवल नाममात्र जैनी कहलाने से कुछ भी आत्मोन्नति नहीं होगी, "होगी शुद्ध सरधने से" ज्ञान विना क्रिया कष्ट करनेसें सर्वथा आराधक कभी नहीं होवोगे "सूत्र में कहा है" (पढमनाण तवो दया) अर्थात् प्रथम ज्ञान और पीछे दया, तथा जो ज्ञान विनाकरणी वा तपस्या करके मुनिराज कहलाते हैं परन्तु उन्हें मुनि नहीं समझना चाहिए क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है "नाणेणय मुणी होई" अर्थात् ज्ञानवंत होने से मुनी होते हैं ज्ञान विना नाम मात्र मुनि राज होते हैं भाव मुनि तो जब हीं होंगे तब नव तत्वों का जाण होके सावद्य कार्य की आज्ञा नहीं देंगे और षट द्रव्य की गुण पर्याय को यथार्थ समझेंगे श्री उत्राध्ययन के मोक्ष मार्ग अध्ययन में कहा है ।

एयं पंच विहणानं दव्वाणय गुणाणय ।
पज्जवाण सव्वेसिं नाणं नाणी हि दंसियं ।१।

अर्थात् वस्तुसत्ता जाणे विना ज्ञानी नहीं तथा नवतत्वों को ओलखे वह समकती है ज्ञान विना चारित्र कभी नहीं होसकता है उत्राध्ययन में ऐसाही कहा है "नाणेण विना न हुंति चरण गुणा" अर्थात् ज्ञान विना चारित्र के गुण नहीं, जीव अजीवादि का ज्ञान होके संयम पचक्खेंगे तब भाव निक्षेपैं मुनिराज होंगे श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कहा है ।

इमे समणा गुणमुक्कयोगी छकाय निरणु कंपा हया इव दुद्दामा गया इव निरंकुसा घट्ठा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरया उणाण जिणाणं अणा एस छंदा

विहरि ऊणाउ भउकालं आवस्स गस्स उवटुंतितं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं।

अर्थात् साधू के गुणों रहित छओं कायों की दया नहीं करने वाले हय याने घोडे की तरह उन्मद्द और निरांकुश हाथी वत् श्री वीतराग की आज्ञा को भंग करने वाले स्वेच्छाचारी तथा स्नान करके शरीर को निर्मल रखके स्वच्छवस्त्रादि से श्रृङ्गार करने वाले केसों को सँवार के शरीर की शोभा बढाने वाले कालों काल प्रतिक्रमणादि नहीं करते हैं इत्यादि अनेक अवगुणों सहित द्रव्य साधू हैं, प्रियवरो ! तब ही तो स्वामी भीषनजी ने द्रव्य साधू भेषधारीयों का संग छोड कर अपने आतमा का उद्धार किया है ओर सुगुरु कुगुरु पहिचानने के निमित्त अनेक ढालें चोपाइयां बनाकर भव्यजीवों को समझाने के लिए उपदेश दिया है सो निर्गुणी भेष धारियों को अत्यन्त अप्रिय लगे हैं तब वो अनेक तरह से उनकी निन्दा करके लोगों को वहकाते हैं कहते हैं भीखनजीने तो भगवान को तो चूके गुरुको रोये वताये हैं और दयां में पाप वताते हैं तथा दान धर्म को तो उठा ही दिया है इत्यादि मन माना कथना कथके भोले लोकों को श्री वीतराग प्ररूपित धर्म मार्ग से विमुख कररहे हैं लेकिन न्यायाश्रयी तो हरगिज भी नहीं मानते, मोक्षाभिलाषी तो समझते हैं निन्दकों का कर्तव्य तो निन्दा करना ही है, निन्दकों की निन्दा से गुणी के गुण कभी भी लुप्त नहीं होते हैं, इसी लिए निन्दक जी चाहेसो निन्दा करो परन्तु गुणी पुरुष तो गुणी ही रहैंगे, और निन्दा करने वाले निन्दक ही रहैंगे, यह किसी को अप्रिय लगे तो क्षमाता हूं परन्तु न्याय बातें तो निःशंक से ही कहना उचित है स्वामीने तो स्वकृत ढालों में किसी का भी नाम ले के अपशब्द नहीं कहा है परन्तु हीणाचारी द्रव्यलिङ्गियों ने अनेकानेक पुस्तकें छपाके स्वामी की निन्दा ऐसे ऐसे शब्दो में किइ है कि जैसे कोई मदिरा के नशे में चूर होके नेक आदमी को गाली गलोज देते हैं, किन्तु भले आदमी को तो हलका शब्द भी मुखसे उच्चारण करते शरम

आती है जो जातिवन्त कुलवन्त और लज्जावन्त होगा वो तो किसी का नाम लेके हरगिज़ भी अपशब्द नहीं निकालेगा परन्तु अधम जातिवाला केवल पेटार्थी गुणशून्य मानव शुद्ध साधू मुनिराजों से द्वेष करके अनेक मृषा आल देते नहीं लाजेंगे जिनकी आदत निन्दा करने की है उन्हें निन्दा किये विना जक नहीं पडती नीति शास्त्रों में कहा है,

नचना परवादेन रमते दुर्जनो जनः ।
काक सर्वरसान् भुक्ता विना मेध्यं न तृप्यति ॥

अर्थात् कागला अनेक रस खाता है परन्तु भ्रष्टा में मुख दिये विना तृप्त नहीं होता है वैसही निन्दक निन्दा किये विना खुश नहीं होता । इस लिए हमारा कहना है हे प्रियवरो ! मत पक्ष को तज के सत्यासत्य का निर्णय करो यह मनुष्य जन्म स्यात् स्यात् नहीं मिलने का है, महानुभावों ! आप लोगों से प्रार्थना है कि द्वेषभाव को छोडकर जिनआज्ञा धर्म धारण करो तब कुगति से वचोगे और अपनी आत्मोन्नति होगी— आपका हितेच्छू

श्रा० जोंहरी गुलाबचन्द लूणीयां

॥ अथ स्वामी श्रीभीखनजी कृत नव पदार्थ उलखना की जोड ॥

दोहा—नमूं वीर शाशन धणी, गणधर गौतम स्वाम ।
तरण तारण पुरुषां तणों, लीजे नित प्रतनाम १

श्लोक—वीराय शासनेशाय, गौत्तमस्वामिने नमः ।
भवाब्धितारकं यस्य, नामस्मरणमञ्जसा ॥१॥

॥ दोहा ॥

तेजीवादि नव पदारथ तणो, निरणो कियो भांत २ ।
त्यांनें हलुकर्मी जीवां उंलखैं, पूरै मनरी खांत ॥२॥

श्लोक–जीवादिक पदार्थानां नवानां भूरिनिर्णयः ।
ज्ञात्वैवं स्वल्पकर्माणः पश्यन्तिहि मनोरथम् २

दोहा–जीव अजीव उलख्यां विना, मिटै न मनरो भ्रम
समकित आयां विन जीवरे, रुकै न आवता कर्म

श्लोक–जीवा न जीवा न ज्ञात्वा मुच्यते न मनो भ्रमः
सम्यक्त्वमन्तरा रोधो जीवानां न भवक्रमात् ।

दोहा–नव ही पदारथ जूजूवा, जथा तथ सरधै जीव ।
ते निश्चय सम दृष्टि जीवडा, त्यां दीधी मुक्तनी नींव ४

श्लोक–पदार्थान् नव संदृस्य, येऽलं श्रद्दधते जनाः ।
समदृष्टि गुणास्ते हि, मुक्ति मूलं प्रयुञ्जते ४

॥ दोहा ॥

हिवै नवही पदारथ ओलखायवा, जुदा २ कहूं छूं भेद ।
पाहिला ओलखाउं जीवने, ते सुणज्यो आण उमेद ५

श्लोक–नवानां हि पदार्थानां, भेदान् वच्मि प्रथक् २ ।
बोधयाम्यादितो जीव, मेतच्छृणुत सादरम् ५

(भावार्थ)

नमस्कार करता हूं श्री वीरप्रभु शासन के धणी को और साधू साध्वी रूप गण के स्वामी गौतम गणधर को इन तरण तारण पुरुषों का हमेशा नाम जपना चाहिए जिनहों ने जीवादिक नवतत्वों का निर्णय विधिपूर्वक किया है सो हलू कर्मीजीव

ओलख करके मनकी भ्रान्ति पुर्ण करैं, क्योंकि जीव अजीव को पहिचाने बगैर मनकी भ्रान्ति नहीं मिटती है मनका भ्रम दूर हुए विना सम्यक्त्व नहीं स्पर्शती ओर समकित के अभाव में आवते हुवे कर्म नहीं रुकते हैं, इसही लिए नवपदार्थों का यथार्थ श्रद्धने से जीव सम दृष्टि कहलाता है तब मोक्षस्थान की नींव याने बुनियाद को दृढ करे हैं इसवास्ते स्वामी भीषनजी कहते हैं नव पदार्थ को उलखाना निमित्त अलग अलग भेद कारिके कहता हूं प्रथम जीव पदार्थ को उलखाता हूं सो हे भव्यजनों यह सुनो।

॥ ढाल ॥

॥ प्रथम डाभमूंजादिकनी डोरी एदेसी ॥

सास्वतो जीव दर्व साक्षात । घटै बधै नहीं तिल मात। तिणरा असंख्याता प्रदेश । घटै बधै नहीं लवलेश ॥ १ ॥ तिणसूं द्रव्य कह्यो जीव एक । भाव जीवरा भेद अनेक। तिणरो बहुत कह्यो विस्तार । ते बुद्धिवन्त जाणै विचार ॥ २ ॥ भगवती वीसमां सतक म्हांय । वीजे उदेसे कह्यो जिनराय । जीवरा तेवीस नाम। गुण निष्पन्न कह्या छै ताम ॥ ३ ॥

(भावार्थ)

जीवको द्रव्य भाव यह दो भेद करि उलखाते हैं द्रव्य जीव के असंख्यात प्रदेश का समूह है वो सदा सर्वदा त्रिकाल में सास्वत हैं उन असंख्यात प्रदेशो में से कभी भी एक अधिक न्यून नहीं होता है उन असंख्याता प्रदेशों की समुदाय करिके एकजीव द्रव्य है याने एक जीव के असंख्याता प्रदेश हैं और उन असंख्याता प्रदेशों का एक जीव है ऐसे लोक में सब जीव अनन्त हैं

पृथक् पृथक् जीवों के अनेक अनेक भाव हैं सब जीवों की समुदाय करिके ही संग्रह नय की अपेक्षायें श्रीठाणांग अंग सूत्र में कहा है "एगे जीवा एगे अजीवा एगे पुन्ना एगे पावा" इत्यादि और एक जीवके अनन्त गुण पर्याय हैं इसवास्ते भाव जीव के अनेक भेद कहे हैं श्रीपञ्चम अङ्ग भगवती के वीसमा शतक के दूसरे उद्देसा में जीवके तेवोस नाम गुण निष्पन्न कहे हैं सो कहते हैं, तात्पर्य्य यह है कि जीव द्रव्यतः सास्वता और भावतः असास्वता है, अब भाव जीव के तैवीस नाम कहे सो कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

जीवे तिवा जीवरो नाम। आउपो नें बले जीव ताम॥ यो तो भाव जीव संसारी। ते बुद्धिवंत लीज्यो बिचारी ॥ ४ ॥ जीवत्थी काय ए जीवरों नाम। देह धरै छै तेह भणी आम॥ परदेशांरो समूह ते काय। पुद्गलरा समूह छै तहाय ॥ ५ ॥ स्वास उस्वास लेवे छे ताम । तिणसूं पाणे तिवा जीवरो नाम॥ भूएतिवा कह्यो इणन्याय। सदा छै तिहूं कालरे मांय ॥ ६ ॥ सत्ते तिवा कह्यो इणन्याय। शुभाशुभ पोते छे ताय॥ विणूतिवा विषय को जाण। शब्दादिक लिया सर्व पिछाण ॥ ७ ॥ वेयातिवा जीवरों नाम । सुख दुख बेदे छै ठाम ठाम॥ तेतो चेतन रूप छै जीव। पुद्गलरो स्वादी सदीव ॥ ८ ॥ चेयातिवा जीवरो नाम । पुद्गलरो

रचना करै ताम । विविध प्रकारना रचै रूप, तै तो भूडानें भला अनूप ॥ ६ ॥ जेया तिवा नाम, श्रीकार कर्मा रो जीपणा हार । तिणारो प्राक्रम शक्ति अनन्त, थोडामें करै कर्मारो अन्त ॥ १० ॥ आया तिवा नाम इणन्याय, सर्वलोक स्पर्शो छै ताहाय । जन्म मरण किया ठाम ठाम, कठै पाम्यो नहीं आराम ॥ ११ ॥ रंगणो तिवा मोह मद माता, रागद्वेष में रहे रंगराता । तिणसूं रहै छै मोहमतवालो, आत्माने लगावै कालो ॥ १२ ॥ हिंडए तिवा जीवरो नाम, चहुं गति में हिंड्यो छै ताम । कर्म हिंडोलै ठाम ठाम, कठै पाम्यो नहीं विसराम ॥ १३ ॥ पोग्गले तिवा जीवरो नाम, पुद्गल ले ले मेल्या ठाम ठाम । पुद्गल में राचरह्यो जीव, तिणसूं लागी संसाररी नीव ॥ १४ ॥ माणवे तिवा जीवरो नाम, नवो नहीं सास्वतो छै ताम । तिणरी पर्याय तो पलटजाय, द्रव्यतो ज्यूं रो ज्यूं रहसीहाय ॥ १५ ॥ कत्ता तिवा जीवरो नाम, कर्मा रो करता छै ताम । तिणसूं तिणनें कह्यो आश्रव, तिणसूं लागे छै पुद्गल द्रव्य ॥ १६ ॥ विकत्ता तिवा नाम इणन्याय, कर्माने विधूणे छै ताय ॥

आ निरजरारी करणी आमाम, जीव उज्वल ते निरजरा ताम ॥ १७ जए तिवा नाम तणों वि-चार, कर्म रिपूरो जीपण हार । जब जीवरी जय होजावै, तब सास्वता सुखजीव पावै ॥ १८ ॥ जंतू तिवा नाम इणन्याय, एक समय लोकान्ते जाय । यहवो शक्ति स्वभावी जीव, तिणरो कदेह न होय अजीव ॥ १६ ॥ सयंभूतिवा छै जीवरो नाम, किण ही निपजायो नहीं ताम । ते तो छै द्रव्य जीव सभावे, ते तो कदे नहीं विल लावे ॥ २० ॥ जोणी तिवा जीवरो नाम, मर मर ऊपनो ठाम ठाम । चौरासी लखयोनीरे मांहि, उपज्यो नें नि-सर गयो ताहि ॥ २१ ॥ ससरीरी तिवा नामँ यह, शरीररे अंतर रहे तेह । शरीर पाछै नाम धरा-यो, काला गौरादि नाम कहायो ॥ २२ ॥ नाया तिवा कर्मारो नायक, निज सुख दुःख नों छै दा-यक । तथा न्याय तणों करण हार, ते तो बोलै छै बचन बिचार ॥ २३ ॥ अन्तर अप्पा तिवा जीवरो नाम, सर्व शरीर व्यापी रह्यो ताम । लोली भूत छै पुद्गल मांहि, निज सरूप दबोरह्यो ताहि ॥ २४ ॥ द्रव्य जीव सास्वतोयेक, तिणरा भाव कह्या छै अनेक । भावतो लक्षण गुण पर्याय, ते तो भाव जीव छै ताय ॥ २५ ॥

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१	जीवेतिवा	जीव	संसारी आयुष्यवंत है तथा सदाजी-वता रहता है इसलिए जीव चेतना वंत है
२	जीवत्थि. कायतिवा	जीवास्ती काय	असंख्यात प्रदेशों का समूह है तथा संसार में शरीर धारण करके काया ऐसा कहलाता है
३	पाणेतिवा	प्राण	प्राणधारी है इस से प्राणीसासो स्वास लेता है
४	भूएतिवा	भूत	चतुर्थ नाम भूत याने सदा सर्वदा त्रि-काल जीव का जीव ही है
५	सत्तेतिवा	सत्व	पांचमू नाम सत्व शुभाशुभ कर्मवन्त है
६	विण्णुतिवा	विज्ञ	छट्टा नाम बिन्नू याने विषयी पंच इन्द्रियों की तेवीस विषय का जाण है
७	वेयातिवा	सुख दुःख वेदक	सुख दुःख का वेदने वाला है इस से सातवां नाम जीव का वेदक है
८	चेयातिया	चेयतीति चेता पुद्ग-लानां चय कारी	पुद्गलों की रचना करता है तथा अच्छा बुरा रूप वर्ण पाता है इस से चेयति आठमा नाम है
९	जेयातिवा	जेयाति.जे-ता. कर्म्म रिपूणां	कर्मरूप शत्रुओं को जीत के जय करता है इसलिए नवमां नाम जेता है

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१०	आयातिवा	आत्मा- नाना गति सतत गाभि त्वात्	नाना प्रकार की गति करके सर्व लोक को स्पर्शता है इस से दसवां नाम आत्मा है
११	रंगणे तिवा	रङ्गणेति. र- ङ्गणं राग स्तद्योगाद्र- ङ्गणः	रागद्वेष मयी रङ्ग से रंगा हुवा है इसी लिए इग्यारमां नाम रङ्गणेति है
१२	हिंडएतिवा	हिएडुएति. हिएडुकत्वे- न हिएडुकः	कर्म मयी हिंडोले में बैठ के च्यार गतों में हिंडता है इससे बारमा नाम हिंडुक है
१३	पोग्गलेति- वा	पूरणाद्गला- च्च शरीरा- दिना पुद्गलः	पुद्गलों को ग्रहण करना और छोडनादि कार्य करता है तथा पुद्गलों से लिप्त है
१४	माणवेति वा	मा. निषेधे नवः प्रत्यग्रो मानवः श्र- नादित्वा- त्पुराणः	यह जीव नया नहीं है सास्वता है इस की पर्याय तो पलटती है परन्तु द्रव्यतः सास्वता है इससे मानव है
१५	कत्तातिवा	कर्त्ता कार- कः कर्म- णाम्	कर्मों का कर्त्ता है वोही आश्रव है इस लिए जीव का नाम करता है

नं०	मूल पाठ	टीका	भावार्थ
१६	विकत्तातिवा	विविधतया कर्ता विकर्तयिता वा छेदेकः कर्मणामेव	कर्मों को विधूणाता है याने करणी कर के निरजरता है विखेरता है इस से विकत्ता
१७	जएतिवा	जयति-अतिशय गमनाज्जगत्	सर्व कर्मों को जीत कर जयी होता है
१८	अंतूतिवा	जन्तुत्ति-जननाज्जन्तु	एक समय में लोकांत जाता है ऐसा शीघ्र चलने वाला है इस लिए जन्तु है
१६	जोणीएतिवा	जोणीति-योनिरन्येषा मुत्पादकत्वात्	चोरासी लत्त प्रकारकी योनियों में उपजता है इसलिए इसका नाम योनि है
२०	सयंभूतिवा	स्वयंभवनात् स्वयम्भः	यह जीव स्वयं सदा अचल है इस को किसीने भी पैदा नहीं किया है
२१	ससरीरीतिवा	सह शरीरेणेति शसरीरी	शरीर के अन्तर रहता है ससरीरी है इस वास्ते इस का नाम शरीर है
२२	नायातिवा	नायकः कर्मणां नेता	कर्मों का नायक याने मालिक है निज सुख दुःख का दायक है इ. नायक है
२३	अंतर अप्यातिवा	अन्तर्मध्यरूपआत्मा न शरीररूप इत्यन्तरात्मेति	सर्व शरीर में व्याप्त है पुद्गलों में लोलीभूत होके निज सरूप को दबाया है

उपरोक्त तेवीस नाम कहे ह और इसी प्रकार से अनेक नाम जीव के कर्म संयोग वियोगादि कारण से जानना द्रव्यतः एक है भावतः अनेक है असंख्यात प्रदेशी तो द्रव्य जीव है और उस के लक्षण गुणपर्याय भाव जीव है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

भाव तो पांच श्रीजिन भाख्या, त्यांरा स्वभाव जुदा जुदा दाख्या । उदय उपसम क्षायक जाणों, क्षयोपसमपरणामिक पिछाणो ॥ २६ ॥ उदय तो आठ कर्म अजीव, त्यां रे उदय से निपना जीव, ते उदय भाव जीव छै ताम, त्यांरा अनेक जुवा वा नांम ॥ २७ ॥ क्षयतो होवै आठ कर्म, जब क्षायक गुण निपजे पर्म । ते क्षायक गुण छै भाव जीव, ते उज्वल रहै सदीव ॥ २८ ॥ उपसमैं छै मोहनीय कर्म एक, जीवरै निपजै गुण अनेक । ते उपसम भाव जीव छै ताम, त्यांरा पिणछै जुवा जुवा नाम ॥ २९ ॥ बे आभरणी मोहनीय अन्तराय, यह च्यारूं कर्म क्षयोपसमथाय । तब उपजै क्षयोपसम भाव चोखो, ते भाव जीव निर-दोखो ॥ ३० ॥ जीव परिणामें जिण २ भाव मांही, ते सगला छै न्यारा न्यारा ताही । पिण परिणा-मिक सारा छै ताम, जेहवा तेहवा परिणामिक

नाम ॥ ३१ ॥ कर्म उदय सें उदय भाव होय, ते
तो भाव जीव छै सोय । कर्म उपस्मीयांसूं उपसम
भाव, ते उपसम भाव जीव इणन्याय ॥ ३२ ॥
कर्म त्तय सें त्तायक भाव होय, ते पिण भाव जीव
छै सोय । कर्म त्तयोपसम सें त्तयोपसम भाव, ते
पिण छै भाव जीव इणन्याय ॥ ३३ ॥ च्यारूं भाव छै
परिणामीक, यो पिण भाव जीव छै ठीक । और जीव
अजीव अनेक, परिणामिक विना नहीं एक ॥३४॥
ये पांचूभाव भाव जीव जाणों, त्यांनें रूडी रीत
पिछाणो । उपजै नें विलै होजाय, ते भाव जीव छै
इणन्याय ॥ ३५ ॥ कर्म संयोग वियोग सें तेह,
भाव जीव निपजै येह । च्यार भाव निश्चय फिर जाय,
त्तायक भाव फिरै नहीं रहाय ॥ ३६ ॥

॥ भावार्थ ॥

असंख्यात प्रदेशी द्रव्य जीव संसारी अनादि कालसे कर्म संतती के साथ लिप्त हो रहा है, अष्ट कर्मों के संयोग वियोग से भाव जीव होता है सो पांचप्रकार से जिनके नाम उदय भाव १, उपसम भाव २, त्तायक भाव ३, त्तयोपसम भाव ४, परिणामिक भाव ५, अष्ट कर्मों के उदय से उदय भाव जीव। सात कर्म उपसम होय नहीं एक मोहनीय कर्म उपसमै याने दबै तब उपसम भाव अष्ट कर्मों के त्तय होनेसे त्तायक भाव जीव। ज्ञानावरणी दरिशनावरणी मोहनीय अन्तराय यह च्यार कर्मक्त योपसम हो तब त्तयोपसम भाव जीव। और उदय में या उपसम में त्तायक में या

क्षयोपसम में येह जीव परिणमें सो परिणामिक भाव जीवजा-णना उपरोक्त भावों मे परिणमनेसे ८० वोलों की प्राप्ती होती हैं उनका वर्णन संक्षेप से यहां करते हैं—

१ उदयतो अष्ट कर्म अजीवहै उन के उदय से ३३ वोल होते हैं सो जीव हैं नरकादि ४ गति, पृथिव्यादि ६ काय, कृष्णादि ६ लेस्या, क्रोधादि ४ कषाय, स्त्रियादि ३ वेद यह २३ हुये, मिथ्या-त्वी २४, अव्रती २५, असन्नी २६ अज्ञाणी २७, आहारता २८, सं-योगी २९, छद्मस्थ ३०, अकेवली ३१, असिद्धता ३२, संसारता ३३,—

२ उपसम एक मोहनीय कर्म होता है सो अजीव है और मोहनीय कर्म के उपसमने से जीव के २ वोलों की प्राप्ती होती है सो उपसम भाव जीव है उपसम सम्यक्त १ उपसम चारित्र २

३ क्षय आठों ही कर्म होते हैं सोतो अजीव हैं उन के क्षय होने से १३ वोलों की प्राप्ती होती हैं सो क्षायक भाव जीव है, ज्ञाना-वरणी कर्म क्षय होने से जीवका जो निज गुन केवल याने सम्पूर्ण ज्ञान होता है ।, दरशनावरणी कर्म क्षय होनेसे जीव का दरिशनगुन है सो होता है केवल दरिशन, १ मोहनीय कर्म के दो भेद हैं दरिशन मोहनीय चारित्र मोहनीय, दरिशन मोहनीय क्षय होने से क्षायक सम्यक्त; ३ चारित्र मोहनीय क्षय होने से क्षा-यक चारित्र, ४ वेदनी कर्म क्षय होने से आत्मिक सुख, ५ नाम कर्म क्षायक होने से अमूर्तिक भाव ६, गोत कर्म क्षय होने से अगुरु लघू ७, आयुष्य कर्म क्षय होने से अटल अवगाहना ८, अन्त-राय कर्म क्षय होने से दान लब्धि ९, लाभ लब्धी १०, भोगलब्धी ११, उपभोगलब्धि १२, वीर्यलब्धि १३

४ क्षयोपसम ज्ञानावरणी दरिशनावरणी मोहनीय अन्तराय इन चार कर्मों का होता है वोतो अजीव है. इन चारों कर्मों का क्षय और उपसम होने से ३२ वोलों की प्राप्ती होता है वो क्षयो-पसम भाव जीव है

(१) ज्ञानावरणी कर्म क्षयोपसम होने से आठ बोलों की प्राप्ती होती है मति ज्ञान १ श्रुतिज्ञान २ अवधि ज्ञान ३ मनः पर्यव ज्ञान ४ मति अज्ञान ५ श्रुतिअज्ञान ६ विभंग अज्ञान ७ भणना याने सीखना गुणना ८ (२) दरिशना वरणी कर्म क्षयोपसम होने से ८ बोलों की प्राप्ती होती है श्रोत्रइन्द्री १ (कान,) चक्षुइन्द्री २ (आंख,) घ्राणइन्द्री ३ (नाक,) रसइन्द्री ४ (जीभ,) स्पर्शइन्द्री ५ (शरीर,) चक्षु दरिशन ६, अचक्षु दरिशन ७, अवधि दरिशन ८।

३ मोहनीय कर्म क्षयोपसम होने से ८ बोलों की प्राप्ती होती है सामाइक चारित्र १, छेदोस्थापनीय चारित्र २, प्रतिहार विशुद्ध चारित्र ३, सूक्षम संपराय चारित्र ४, देशव्रत (श्रावकपणां) ५, समदृष्टि ६, मित्थ्यादृष्टि ७, सम मित्थ्यादृष्टि ८।

४ अन्तराय कर्म क्षयोपसम होने से ८ बोलों की प्राप्तीहोती है दानालब्धि १, लाभालब्धि २, भोगालब्धि ३, उपभोगालब्धि ४, वीर्यलब्धि ५, बालवीर्य ६, पण्डित वीर्य ७, बाल पण्डित वीर्य ८,

उपरोक्त चार भावों के अस्सी बोलों में से कितनेक बोल जीव में हमेशां पावेहीगें, लक्षण गुण पर्याय को भाव जीव कहते हैं, तात्पर्य यह है कि गुणों की समुदाय तो द्रव्यजीव सास्वता है, और गुणों में परिवर्तना, वो भाव जीव, पर्याय तें असास्वता है। उदय निष्पन्न, उपसम निष्पन्न, क्षायक निष्पन्न, क्षयोपसम निष्पन्न, और परिणामिक निष्पन्न, यह पांच भावों में से चारतो, कालान्तर में पलट जाते हैं, और क्षायक निष्पन्न भाव हुए बाद नहीं पलटता है, सो बुद्धिमानजन इस को यथा तथ्य समझलेंगे

॥ ढाल तेहीज ॥

द्रव्यतो सास्वतो छै ताहि, ते तो तीनूंही कालरै मांहि। ते तो विलय कदे नहीं होय, द्रव्यतो

ज्यूंरो ज्यूं रहैसीसोय ॥ ३७ ॥ ते तो छेद्यो न कदे छेदावै, भेद्यो पिण कदे नांही भेदावै । जाल्यो पिण जलै नाहीं, बाल्यो पिण न बलै अग्नि मांहि ॥ ३८ ॥ काट्यो पिण कटै नहीं कांई, गालै तो पिण गलै नाहीं । बांटै तो पिण नहीं बँटाय, घसै तो पिण नहीं घसाय ॥ ३९ ॥ द्रव्ये असंख्यात प्रदेशी जीव, नितरो नित्य रहै सदीव । ते मार्‍यो पिण मरै नांहि, बले घटैं बधै नहिं कांई ॥ ४० ॥ द्रव्यतो असंख्यात प्रदेशी, ते तो सदा ज्यूंरो ज्यूं रहसी । एक प्रदेश पिण घटै नाहीं, ते तो तीनूं ही कालरेमांहि ॥ ४१ ॥ खंडायो पिण नखंडै लिगार, नित्य सदा रहै एक धार । एहवोछै द्रव्य जीव अखंड, अखीथको रहै इण मंड ॥ ४२ ॥

॥ भावार्थ ॥

द्रव्यतः जीव सास्वता है याने जीव का अजीव तीन काल में कभी भी नहीं होता है, जीव को छेदने से छेद्र नहीं होता है भेदने से भेद नहीं होता है, जलानेसे जलता नहीं बालने से बलता नहीं काटने से असंख्याता परदेशों के टुकडें टुकडे नहीं होते गालने से गलता नहीं, पीसने से पिसता नहीं, घसने से घसता नहीं, असंख्यातप्रदेशों में से कमी वेसी किसी काल में होती नहीं और एक जीव के प्रदेश दुसरे जीव में नहीं मिलते हैं अरूपी अभेदी अछेदी है, ऐसा जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेश मयी स्वतन्त्र

में रहता है इस वास्ते जीव को द्रव्यार्थ करके सास्वता कहा है अब भावार्थ करके असास्वता कहा सो कहते हैं।

॥ ढालतें तेहिज ॥

द्रव्यरा अनेक भाव छै रहाय, ते तो लक्षण गुण पर्याय। भाव लक्षण गुण पर्याय, ये च्यारुं भाव जीव छै रहाय ॥४३॥ यह चारुं भलाने भुंडा होय, येक धारा न रहे कोय। केई क्षायक भाव रहसी एक धार, नीप्यना पछै न घटै लिगार ॥४४॥ द्रव्यजीव सास्वतो जाणों, तिणमें शंका मूल मआणो, भगवति सातमां शतक मांय, दूजे उद्देसै कह्यो जिनराय ॥४५॥ भावे जीव, असास्वतो जाणो, तिण में पिण शंकामूल म आणों। एपिण सातमां शतक म्हांय, दूजे उद्देसै कह्यो जिनराय ॥४६॥ जेती जीव तणी पर्याय, असास्वती कही जीनराय। तिणने निश्चय भाव जीव जाणो, तिणने रूडी रीत पिछाणो ॥ ४७ ॥ कर्मा रो करता जीव छै तायों, तिणसुं आश्रव नाम धरायो। ते आश्रव छै भाव जीव, कर्म लागैते पुद्गल अजीव ॥४८॥ कर्म रोकै छै जीव रहायो, तिण गुणसुं संवर कहायो। संवर गुण छै भाव जीव, रुकिया छै कर्म पुद्गल अजीव ॥ ४९ ॥ कर्म तूटं

जीव उज्वलथायो, तिणने निर्जरा कहि जिनरायो, ते निर्जरा छै भाव जीवो, तूटै ते कर्म पुद्गल अजीवो ॥ ५० ॥ समस्त कर्मां से जीव मुंकायो, तिणसूं ए जीव मोक्षकहायो । मोक्ष ते पिण छै भाव जीव, मुंकीयागया कर्म अजीव ॥५१॥ शब्दादिक कांमने भोग, त्यांनैं त्यागीनें पाडै वियोग । ते तो संवर छै भाव जीव, तिणसूं रूकिया छै कर्म अजीव ॥ ५२ ॥ शब्दादिक कामने भोग, तेहनूं करै संजोग, ते तो आश्रव छै भावजीव, तिणसूं लागै छै कर्म अजीव ॥ ५३ ॥ निरजराने निरजरा-नी करणी, यह दोनूं हीं जीवने आदरणी, यह दोनूं छै भाव जीव, तूटाने तूटै कर्म अजीव ॥ ५४ ॥ काम भोग सैं पामैं आरामों, ते संसार थकी जीव स्हा-मों, ते आश्रव छै भावजीव, तिणसूं लागै छै कर्म अजीव ॥ ५५ ॥ काम भोग थकी नेह टूटो, ते संसार थकी छै अपूठो । ते संवर निर्जरा भाव जीव, जब रूकै तुटै ते कर्म अजीव ॥ ५६ ॥ सावद्य कर-णी छै सर्व अकार्ज ते तो सगला छै कर्तव्य अनार्ज, ते सगला छै भाव जीव, त्यांसूं लागै छै कर्म अजीव ॥ ५७ ॥ जिन आज्ञा पालै रुडी रीत, ते पिण भाव

जीव सुविनीत । जीन आज्ञा लोपी चाले कुरीत, ते छे भाव जीव अनीत ॥ ५८ ॥ सूर वीर संसार रे माहीं, किणरा डराया डरे नांही, ते पिण छै भाव जीव संसारी, ते तो हुवो अनन्ती वारी ॥५९॥ सांचा सूर वीर साक्षात्, ते तो कर्म काटे दिनरात, ते पिण भाव जीव छै चोखो, दिनदिन नैडी करे मोखो ॥६०॥ कहि कहिने कीतोयिक केहूं, द्रव्यने भाव जीव छै वेहूं, त्यानें रूडीरीति पिछाणो, छैज्यूंरा ज्यूं हिया में आणो ॥६१॥ द्रव्य भाव ओलखावन ताम । जोड कीधी श्रीजीद्वारा सू ठाम । सम्बत अठारह सय पचपन वर्ष, चैत वदी पख तिथि तेरस ॥ ६१ ॥

इति स्वामी श्री भीखनजी कृत जीव पदार्थ ओलखनाकी ढाल—

॥ भावार्थ ॥

द्रव्यके अनेक भाव हैं; लक्षण परियाय इन च्यारों को भाव जीव समझना, जीवका लक्षण चैतन्य गुण ज्ञानादि, परियाय, ज्ञान करके अनन्त पदार्थ को जाणैं इस से अनन्ती पर्याय है वो असास्वती है, कर्मों का क्षायक हो के जो भाव निष्पन्न होता है वो सास्वता है, श्री भगवती सूत्र के सात में शतक के दूजे उद्देसे द्रव्यतः जीव सास्वता और भावतः असास्वता कहा है इस में किसी तरह की शंका नहीं रखनी चाहिये, जीवतो द्रव्य है और उसकी पर्याय भाव है इसे अच्छी तरह समझना और पहिचानना चाहिए. कर्मों को ग्रहण करे वो आश्रव भाव जीव है,

कर्मों को रोके वो संवर भाव जीव है, देशतः कर्म तोड दे-
शतः जीव उज्वल होय वो निर्जरा भाव जीव है, सर्वतः कर्मों को
मुंकावे याने छांडे वो मोक्ष भावजीव है, शब्दादिक काम भोगों
का वियोग को वांछे सो संवर भाव जीव। और कर्म रुके वो अ-
जीव। शब्दादिक काम भोगों का वियोग न वांछे वो आश्रव भाव-
जीव। कर्म लगे वो अजीव हैं, जीव देशतः जीव उज्वल होय वो
निर्जरा और अणसणादि द्वादश प्रकार से कर्म निर्जरे वो निर्जरा
की करणी है निर्जरा और निर्जरा की करणी यह दोनों ही जीव
को आदरणेयोग्य है। जीव इन्द्रियों के काम भोगों से आराम मा-
ने वो संसार से सन्मुख है इसलिए जीवका नाम आश्रव है, और
काम भोगों से विरक्त रहै वह संसार से विमुख है इस लिए जी-
वका नाम संवर है। जीवका सावद्य कर्तव्य अनार्य पणा है उस से
कर्म बंधते हैं उस करणी का नाम आश्रव है। सो भाव जीव है।
जिन आज्ञा प्रमाण कार्य कर्ता है वो सुविनीत भाव जीव और
जिन आज्ञा लोप के कुरीत चलै वो अनीत भाव जीव है, । सू-
वीर पुरुष संसार में संग्राम करते हैं किसी के डराये डरते न-
हीं वो संसारिक सूरवीर भाव जीव हैं, और कर्म मयी शत्रूको
नाशकरते हैं वे सच्चे धार्मिक भावजीव हैं, तात्पर्य यह है कि अ-
संख्यात प्रदेश अखंड है वो द्रव्य जीवसदा सर्वदा सास्वता है
याने जीव द्रव्य का अजीव द्रव्य कभी भी नहीं होता है और
उसीके गुण पर्याय हैं वो भाव जीव हैं वो असास्वता है इनको
यथार्थ जैस ज्ञानी देवों ने जिस जिस अपेक्षासे कहा है उस ही
तरह से जान के सत्य श्रद्धो, जीव पदार्थ को द्रव्यतः और भा-
वतः ओलखाने के लिए स्वामी श्री भीखनजीने विक्रम संवत्
१८५५ चैत सुद १३ को मेवाड देशान्तर्गत श्रीनाथद्वारा में
ढाल जोड के कहा है इस का भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि अ-
नुसार कहा है सो कोई अशुद्धार्थ जाणते अजाणते आया हो
उसका मुझे सर्वतः मिच्छामि दुकडं है गुणीजन शुद्ध पढें
पढावेंगे—

आपका हितेच्छू
जौंहरी गुलाबचन्द लूणीयां

॥ अथ द्वितिय अजीव पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥ अजीव पदार्थ ओलखायवा, तिणरा कहुं भाव भेद । थोडासा प्रगट करूं, ते सुणज्यो आण उमेद ॥ १ ॥ ढाल ॥ मम करो काया माया कारमी एदेशी । धर्म अधर्म आकाश छै, काल नें पुद्गल जांणजी । ये पांचूहीं द्रव्य अजीव छै, त्यांरी बुद्धिवन्त करज्यो पिछाणजी ॥ हिव अजीव पदार्थ ओलखो ॥ १ ॥ यह चारूं ही द्रव्य अरूपी कह्या, यां में वर्ण गन्ध रस स्पर्श नाहिंजी एक पुद्गल द्रव्य रूपी कह्यो, वर्णादिक सर्व तिण मांहिजी ॥ हि ॥ २ ॥ यह पांचू ही द्रव्यभेला रहै, पिण भेल सभेल नहीं होयजी । आप आप तणां गुण लेरह्या, त्यां नें भेला करसके नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ३ ॥ धर्म द्रव्य धर्मास्तिकाय छै, आस्ति ते छती वस्तु ताहजी । असंख्यात प्रदेश छै तेहना तिणसूं काय कही जिणरायजी । हिव ॥४॥ अधर्म द्रव्य अधर्मास्ति काय छै, या पिण छती वस्तु तायजी, असंख्यात प्रदेश छै तेहसूं, काय कही इण न्यायजी ॥ हिव ॥ ५ ॥ आकाशद्रव्य आकाशास्तिकायछै, या पिण छतीवस्तु ताहायजी ।

अनन्त प्रदेश छै तेहना, तिणसूं काय कही जिन रायजी ॥ हिव ॥ ६ ॥ धर्मास्ति अधर्मास्ति काय तो, पहुली छै लोक प्रमाणजी । लोकालोक प्रमाण आकाशास्ति, लांबी नें पहुली जाणजी ॥ हिव ॥ ७ ॥ धर्मास्ति नें अधर्मास्ति वालि, तीजी आकाशास्ति कायजी । यह तीनूं ही कही जिन सास्वती, तीनूं ही कालरै मांहिजी ॥ हिव ॥ ८ ॥ यह तीनूं हीं द्रव्य छै जुआ, २ जुवा जुवा गुण पर्यायजी । त्यांरा गुण पर्याय पलटै नहीं, सास्वता तीन काल मांहिजी ॥ हिव ॥ ९ ॥ यह तीनूं ही द्रव्य फैली रहया, ते हालै चालै नही ताहजी । हालै चालै ते पुद्गल जीव छै, ते फिरै लोकरे मांहिजी ॥ हिव ॥ १० ॥ जीव पुद्गल चालै तेहनें, सहाय धर्मास्ति कायजी, अनन्ता चालै त्यानें सहाय छै, तिण सुं अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिव ॥ ११ ॥ जीव नें पुद्गल थिर रहै तिणनें सहाय अधर्मास्ती कायजी । अनन्ता थिर रहै त्यांने सहाय छै, तिणसूं अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिव ॥ १२ ॥ जीव अजीव सर्व द्रव्यनो, भाजन आकाशास्ति कायजी । अनन्तारो भाजन छै तेहसूं, अनन्ती कही पर्यायजी ॥

हिवे ॥ १३ ॥ चालवानें सहाय धर्मास्ती । थिर रहवानें अधर्मास्ति कायजी । आकाशविकास भाजन गुण । सर्व द्रव रहै तिण मांयजी ॥ हिव ॥१४॥ धर्मास्तिनां तीन भेद छै । खंध अनें देश प्रदेशजी । आखी धर्मास्ती खंध छे, तेऊंणी नहीं लवलेशजी ॥ हिवे ॥ १५ ॥ दोय प्रदेश थीं आदि दे । एक प्रदेश ऊणुं खंध न होयजी । तिहां लगि देश प्रदेश छै । तिणनें खंध म जाणजो कोयजी॥ हिवे ॥ १६ ॥ धर्मास्तीरो एक प्रदेश छै । ते खंध देश न कोयजी । जघन्यतो दोय प्रदेश विन । देश पिण कदेय नहीं होयजी ॥ हिवे ॥ १७ ॥ धर्मास्ती काय सें थाले पड़ी । तावड़ा छांय जिम एक धारजी । तिणरे बेंटो न बींटी को नहीं । बालि नहीं कोई सांध लिगारजी ॥ हिवे ॥ १८ ॥ पुद्गलास्ति सें प्रदेश अलगो पड्यो । तिण नें परमाणु कह्यो जिनरायजी । ते सूक्ष्म परमाणूंथकी । तिणसूं मांपी धर्मास्ती कायजी ॥ हिवे ॥ १९ ॥ एक परमाणूं स्पर्शे धर्मास्ती, तिणनें प्रदेश कह्यो जिन रायजी । तिण मांपासूं धर्मास्ती कायनां, असंख्याता प्रदेश हुवै त्हायजी ॥ हिवे ॥ २० ॥

असंख्यात प्रदेशी धर्मास्ती । अधर्मास्ती इमहिज जांणजी । इम अनन्ता आकाशास्ती कायनां, प्रदेश इणरीत पिछाणजी ॥ हिवे ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब अजीव पदार्थ को ओलखाते हैं, अजीव पांच प्रकारके हैं धर्मास्ति १ अधर्मास्ति २ आकाशास्ति ३ काल ४ पुद्गलास्ति ५ यह पांच अजीवहै, इनमें चार तो अरूपी हैं जिन में वर्ण रस गंध स्पर्श नहीं है, और एक पुद्गल द्रव्य रूपी है, धर्मास्ति काय का धर्म याने स्वभाव चलते हुये जीव पुद्गलों को चलने का सहाय देने का है, चलने का प्रति पक्ष स्थिर है इसलिए अधर्मास्ति का यका स्वभाव स्थिर को स्थिर सहाययी है, और आकाशास्ति का स्वभाव अवकास देने का है यह तीनूं स्वयं स्थिर हैं, यह तीनों छती वस्तु है इस से इन को आस्ति कही है याने समझाने को सिर्फ कल्पना करके हीं नहीं कहेहैं, धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाशास्ति यह तीनूं हीं अजीव द्रव्य निश्चय अरूपी हैं जैसे धूप छाया वत् जानना और यह सप्रदेशी याने प्रदेश सहित समूह है इस वास्ते इन्हें काय कही है, इन तीनों में धर्मास्ति काय अधर्मास्ति काय तो चौदह राजु लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं और आकाशास्ति काय लोकालोकप्रमाण अनन्त प्रदेशी हैं, तथा यह तीनूं ही काल में सास्वते हैं इन के गुण पर्याय अपने २ अलग २ हैं कभी भी पलटते नहीं हैं याने परस्पर कभी भी मिलते नहीं तथा यह तीनों द्रव्य हलते चलते नहीं हैं, पांच द्रव्योमें जीव और पुद्गल सिर्फ दोही द्रव्य हलते चलते हैं, जिन्हों को सहाय धर्मास्ति कायकाहै, जीव पुद्गल स्थिर रहैं उन्हों को सहाय अधर्मास्ति काय का है, और भाजन याने अवकास गुण देना आकाशास्ति काय का है, परन्तु ऐसा कभी भी नहीं होता कि धर्मास्ति का गुण चलन सहायी है सो पर्यंथ पलट के कालान्तर में स्थिर सहायी होजाय अथवा भाजन सहायी होजाय ऐसेही अधर्मास्ति की और आकाशास्ति की पर्याय नहीं पलटती है, धर्मास्ति काय चलते हलते अनन्त जीवों को और अजीवों को

सहाय देंती है इससें धर्मास्ति काय की अनन्ती पर्याय है, ऐसें ही अधर्मास्ति और आकाशास्तिकायकी गुनों की अनन्ती पर्याय जानना, अब इन तीनों को तीनं तीन भेद करके बताते हैं खंध देश प्रदेश, सर्व धर्मास्ति का प्रदेशों का समूह है, वो तो खंध है, दो प्रदेशों से एक प्रदेश कम तक देश है, और एक प्रदेश प्रदेश है, दोय प्रदेशों से कम देश नहीं होता और एकप्रदेश कम वाकी प्रदेशों को खंध नहीं कहा जाता, अब एक प्रदेश का मान बताते हैं पुदुगलास्ति कायसे एक प्रदेश अलग हुआ उसे परमाणु पुदुगल कहते हैं याने उत्कृष्ट अणु छोटे सें छोटा है वो काटने सें कटता नहीं और पीसने सें पिसता नहीं ऐसा सूक्षम एक परमाणुहै उतनाहीं धर्मास्तिकायका एक प्रदेशहै, ऐसेही अधर्मास्ति आकाशास्ति का जानना, तातपर येक परमाणुं येक प्रदेश तुल्य है, अस्त कलपना द्रष्टान्ति देके कहते हैं कोई पुरुष येकपरमाणु सें धर्मास्ति को नांपे तो असंख्यात प्रदेशहोय ऐसेही अधर्मास्ति के असंख्यात प्रदेश, इसही तरहैं आकाशास्ति के अनन्त प्रदेशहों, अब काल पदार्थ का बर्णन करते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

काल अजीव छै तेहनां, द्रव्य कह्या छै अनन्तजी। निप्पन्ना निपजे निपजसी वलि, त्यांरो कदेहन आवसी अन्तजी ॥ हिव ॥ २२ ॥ गये काल अनन्ता समया हुआ, वर्तमान समय येक जाणजी। आगमियें काल अनन्ता समां हुसी, इमकाल द्रव्यनें पिछाणजी ॥ हिव ॥ २३ ॥ काल द्रव्य निपजवा आंसरी, तिणनें सास्वतो कह्यो जिनरायजी। उपजै नें विणसें तिण आंसरी असास्वतो

जाणों इण न्यायजी ॥ हिव ॥ २४ ॥ तिणसूं काल द्रव्य नहीं सास्वतो, उपजै जेम प्रवाहजी । समों उपजै ते विणसै सही, तिणरो कदेह न आवै छै थाहजी ॥ हिव ॥ २५ ॥ सूर्य नें चंद्रमां दिकरी चालसें, समो निपजै दग चालजी । निपजवा लेखे तो काल सास्वतो, समयादिक सर्व अद्धकालजी ॥ हिव ॥ २६ ॥ येक समों निपजी नें विणस गयो । पछै दूजो समों हुओ ताहायजी । दूजो विणस्यां तीजो निपजै, इम अनुक्रमें निपजता जायजी ॥ हिव ॥ २७ ॥ काल वर्तै अढाई द्वीपमें, अढाई द्वीप बारै काल नांहिजी । अढाई द्वीप बारला जोतषी, येक ठाम रहै छै त्यांहिजी ॥ हिव ॥ २८ ॥ दोय समयादिक भेला हुवे नहीं, तिणसूं कालनें खन्ध न कह्यो जिन रायजी । खन्ध तो हुअ घणांरा समुदायथी, समुदाय बिन खन्ध नहीं थायजी ॥ हिव ॥ २६ ॥ गये काल अनन्ता समया हुआ, ते येकठा भेला नहीं हुआ कोयजी । येतो ऊपजै नें तिम विणसे गया, तिणरो खन्ध किहांथकी होयजी ॥ हिव ॥ ३० ॥ आगमियें काल अनन्ता समां हुसी, ते पिण येकठा

भेला न हुवै कोयजी । ते उपजै नें बिललावसी, तिणसूं खन्ध किसीपर होयजी ॥ हिव ॥३१॥ बर्तमान समों येक कालरो, येक समांरो खन्ध नहीं होयजी। ते पिण उपजैं नें बिललावसी, कालरो स्थिर द्रव्य नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ३२ ॥ खन्ध बिन देश हुऔ नहीं, खन्ध देश बिन हुवै नहीं प्रदेशजी। प्रदेश अलगो नहीं हुवै खन्धथी, तिणसूं परमाणूं नहीं लव लेशजी ॥ हिव ॥ ३३ ॥ तिणसूं काल नें खन्ध कह्यो नहीं, बले नहीं कह्यो देश प्रदेशजी । खन्धथी छूट अलग पड्यां बिना । पर्माणूंतो कोण गिणें शजी ॥ हिव ॥ ३४ ॥ कालरो मांपो थाप्यो तीर्थंकरां, चंद्रमांदिकरी चालसूं विख्यातजी । ते चाल सदा काल सास्वती, घटै बधै नहीं तिल मातजी ॥ हिव ॥ ३५ ॥ तिणसूं मांपो तीर्थंकरां बांधियो, जघन्य समय स्थाप्यो येकजी । ए-जघन्य स्थिति कालरा द्रव्यरी, तिणथी अधिकरा भेद अनेकजी ॥ हिव ॥ ३६ ॥ असंख्याता समयरी थापी आंवलिका, पछै महूरत पहोर दिन रातजी । पक्ष मास अयन ऋतु स्थापिया, दोय अयनरो बर्ष विख्यातजी ॥ हिव ॥ ३७ ॥ इम कहतां अ

पल्योपम सागरू, उतसर्पणी नें अवशर्पणी जाणजी। जीव पुद्‌गल प्रावर्तन स्थापिया, इम काल द्रव्यनें पिछाणजी ॥ हिव ॥ ३८ ॥ इण विधि गयो काल नींकल्यो, इम हिज आगामियों कालजी। वर्तमान समों पूछे तिणसमें, येक समय अद्धाकालजी ॥ हिव ॥ ३९ ॥ ते समय वर्तें अढी द्वीपमें, तिर्छो इतनी दूर जांणजी। ऊंचो वर्तें जोतिष चक्र लगे, नवसय योजन प्रमाणजी ॥ हिव ॥ ४० ॥ नींचो वर्तें सहस्र योजन लगे, महा विदेहरी दोय विजय मांयजी। त्यांमें वर्तें अनन्ता द्रव्यां ऊपरे, तिणसूं अनन्ती कही पर्यायजी ॥ हिव ॥ ४१ ॥ येक येक द्रव्यरे ऊपरेयेक२समय गिणयों तहायजी। तिणसूंयेक समां नें अनन्ता कह्या, कालतणी पर्यायरे न्यायजी ॥ हिव ॥४२॥ वलि कहि कहिनें कितनीं कहूं, वर्तमान समय सदा येकजी। तिण येकण नैं अनन्ता कह्या, तिणनें ओलखो आण विवेकजी ॥ हिव ॥ ४३ ॥

॥ भावार्थ ॥

काल पदार्थ के अनन्त द्रव्य हैं सो हुये होय और होसी जिस का विस्तार कहते हैं, गत काल में अनन्ता समया हुआ, वर्तमान

में येक समय और आगमियां काल अनन्ता समया होवेंगे किसी वक्त में काल का समय नहीं वर्तता ऐसा कभी भी नहीं होताहैं, इस अपेक्षाय सें काल सास्वता है, और समय उपजके बिनस जाता है इससें असास्वता है जैसें निपजता है वैसें हीं नास हो-ता है, भूत भविष्यत और वर्तमान के समया येकत्र नहीं होता इससें काल द्रव्यका खन्ध नहीं, और खन्ध बिना देश और प्रदेश नहीं जिससें इस काल द्रव्य के संग आस्ति शब्द नहीं है; तीर्थं-कर देवोंनें चंद्रमा सूर्यादिककी चालसें कालका प्रमाण कहा है, निरोगी पुरुषका येक नेत्र फरुके उतना वक्तके असंख्यात समय और असंख्यात समयकी येक आवलिका पिछै महूरत दिन रात्रि पक्ष मास ऋतु अयन वर्ष पल्योपम सागरोपम और बीस कोड़ा कोड़ि सगरोपम का येक काल चक्र, और अनन्त काल चक्रका येक पुदुगल परिवर्त्तन आदि का प्रमाण जम्बू द्वीप पन्नती में विस्तार पूर्वक कहा है, तात्पर जघन्य कालकी स्थिति येक समय है इसतरहें सें येक समय पीछे दूसरा और दूसरे पीछे तीसरा इसही तरहैं समय उत्पन्न होके विनस जाते हैं यह वर्त-ना रूपकाल ढाई द्वीप और दो समुद्र में है आगे को नहीं क्योंके अर्ध पुस्कर वर द्वीप सें आगे ज्यो जोतिष चक्र है वो स्थिर है और अन्दरके जोतषी चर हैं उनकी चाल सदा तीन काल में सा-स्वती येकसा है किञ्चित भी फर्क नहीं होता है इस सें कालका प्रमाण कहा है, वर्तमान का येक समय अनन्ते जीवों और अजीवों पर वर्तता है जिससें कालकी अनन्ती पर्यायहै, तथा इसीसें का-लके अनन्ते द्रव्य कहेहैं, क्योंके वर्तमान का समय अनन्ते द्रव्यों पर वर्ता तो अनन्ते समय हुये, मतलब उसही येक समयको द्रव्यतः अनन्ता कहा है, क्षेत्रतें तिरछा ४५ लक्ष योजन प्रमाण, ऊंचा सम भूमिसें ९०० योजन जोतिष चक्र प्रमाण, और नीचा १००० योजन तक जानना, कारण महा विदेह क्षेत्रकी २ बिजय येक हजार यो-जन सम भूमि सें नीची है, इसालिये नीचा येक हजार योजन तक काल वर्तता है, यह वर्तना रूप काल है, गत काल तो आदि रहि-त अन्त सहित, वर्तमान काल आदि सहित अन्त सहित, भवि-

ष्यत काल आदि सहित और अन्त रहीत है, ये काल द्रव्य अजीव अरूपी हैं, इसके वर्ण गन्ध रस स्पर्श नहीं है, और वर्तमान का समां येक ही है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

काल द्रव्य अरूपीतणुं । ये कह्यो छै अल्प बिस्तारजी । हिव पुद्गल द्रव्य रूपीतणूं । बिस्तार सूणो एक धारजी ॥ हिव ॥४४॥ पुद्गलरा द्रव्य अनन्ता कह्या । ते द्रवतो सास्वता जांणजी ॥ भावें तो पुद्गल असास्वतो । तिणरी बुद्धि वंत करिजो पिछाणजी ॥ ४५ ॥ पुद्गल द्रव्य अनन्ता कह्या, ते घटै बधै नहीं एकजी । घटै बधै ते भाव पुद्गलू । तिणरा छै भेद अनेकजी ॥हिव ॥४६॥ तिणरा च्यार भेद जिनवर कह्या, खन्ध नें देश प्रदेशजी । चौथो भेद न्यारो परमाणूवो । तिणरो छै योहिज बिशेषजी ॥ हिव ॥ ४७ ॥ खन्धरै लग्यो तिहां लग प्रदेश छै, ते छूट नें येकलो होयजी । तिणनें कहिजे परमाणूवो । तिणमें फेर पडयो नहीं कोयजी ॥ हिव ॥ ४८ ॥ परमाणूंवो नें प्रदेश तुल्य छै, तिणमैं शंका मूल मत आंणजी, अंगुलरै असंख्यातमें भागछै । तिणनें ओलखो चतुरसु

जाणजी ॥ हिव ॥ ४६ ॥ उत्कृष्टो खन्ध पुद्गल तणू, जब सम्पूर्ण लोक प्रमाणजी । आंगुलरै भाग असंख्यातमें, जघन्य खन्ध येतलो जांणजी ॥हिव॥ ॥५०॥ अनन्त प्रदेशीयो खन्धहुश्रै, येक प्रदेश क्षेत्रमें समायजी । ते पुद्गल फैलै मोटो खन्ध हुश्रै, ते सम्पूर्ण लोकरै म्हांयजी ॥ हिव ॥ ५१ ॥ समुचय पुद्गल तीनलोक में, खाली ठोर जगां नहीं कांयजी । तै आंमां सांमां फिर रह्या लोकमें, येक ठाम रहै नहीं रहायजी ॥ हिव ॥५२॥ स्थिति च्यारूं हीं भेदां तणी, जघन्य येक समय तामजी । उत्कृष्टी असंख्यात कालरी, ये भाव पुद्गल तणा परिणाम जी ॥ हिव ॥ ५३ ॥ पुद्गलरो स्वभावछै यहवो, अनन्ता गलैं नें मिलजायजी । तिण पुद्गलरा भावरी, अनन्ती काहि पर्यायजी ॥ हिव ॥ ५४ ॥ जेजे वस्तु निपजै पुद्गलतणी, तेतो सघली विललायजी, त्यानें भाव पुद्गल श्रीजिन कह्या, द्रव्यतो ज्युंरो ज्युं रहै ताहायजी ॥ हिव ॥ ५५ ॥ आठ कर्म नें शरीर असास्वता, येह निप्पन्ना हुआ छै तायजी । तिणसें भाव पुद्गल कहया तेहनें, द्रव्य निपजायो नहीं निपजायजी ॥ हिव॥ ५६ ॥

छाया-तावडो प्रभाः कान्तिछै, येह सघला भाव पुद्गल जाणजी । अंधारो नें वलिउद्योतछै, येह भाव पुद्गल पिछाणजी ॥ हिव ॥ ५७ ॥ हलको भारी सुहालो खरखरो, गोल वाटलादिक पांच संठाणजी । घडा पडानें वस्त्रादिके, सघला भाव पुद्गल जाणजी ॥ हिव ॥५८॥ घ्रत गुलादिक दसूं विघय, भोजनादिक सर्व वखाणजी । वस्त्र विविध प्रकारना, येह सघलाही भाव पुद्गल जाणजी ॥ हिव ॥ ५९ ॥ सैंकडां मण पुद्गल वल गया, द्रव्यतो नहीं वलै असमातजी । एभावे पुद्गल ऊपन्नाहुंता, ते पिण भावे पुद्गल विलैजातजी ।हिव। ॥ ६० ॥ सैंकडां मण पुद्गल ऊपन्ना, द्रव्य तो नहीं ऊपना लिगारजी । ऊपना तेहिज विणससी, पिण द्रव्यरो नहीं विगारजी ॥ हिव ॥ ६१ ॥ द्रव्य तो कदेही विणसैं नहीं, तीनूं हीं कालरे म्हांयजी, ऊपजै विणसैं तेतो भावछै, ते पुद्गल तणी पर्यायजी ॥ हिव ॥६२॥ पुद्गल नें कह्यो सास्वतो असास्वतो, द्रव्यअनें भावरै न्याय जी । कहयां छै उत्तराध्ययन छत्तीसमैं, तिणमैं शंका मत आणज्यो कायजी ॥ हिव ॥ ६३ ॥ अजीव द्रव्य ओ-

लखायना, जोड कीधी छै श्रीजी द्वारा मंभ्कारजी । सम्बत् अट्ठारह पच्चावनें, बैसाख बद पंचमी बुद्धवारजी ॥ हिव ॥६४॥ इति अजीव पदार्थ ॥

॥ भावार्थ ॥

काल द्रव्य अरूपी का विस्तार अल्प मात्र कहा अब पुद्गल द्रव्य रूपीका विस्तार कहते हैं. पुद्गलका स्वभाव पूर्ण गलन है सो पुद्गल अचेतन रूपी है द्रव्यतः अनन्ता द्रव्य हैं सो तीन काल में सास्वता हैं कुछ घटता नहीं, वा बधता नहीं और भावतः असास्वता है. पुद्गल के च्यार भेद जिनेश्वर देवोंने कहा है, खन्ध देश प्रदेश और चौथा भेद अलग परमाणु, जबतक खन्ध के साथ हैं तबतक उसही का नाम प्रदेश हैं, खन्धसें छूटके अलग होके येकला रहनेसें उसका नाम पर्माणु है, पर्माणु और प्रदेश दोनूं तुल्य हैं आंगुल के असंख्यात में भाग अनावस्थिति अवगाहना है, तथा पुद्गलोंका खन्धको अवगाहना भी जघन्यतो आंगुल के असंख्यात में भाग हैं उत्कृष्टी सम्पूर्ण लोक प्रमाण हैं परन्तु अनन्त प्रदेशीया खन्ध येक आकाश प्रदेश में समा जाता है इसका कारण आकाश प्रदेशका स्वभाव अवकास देनेका ही है, येक आकाश प्रदेश क्षेत्रमें समाया हुआ पुद्गलों का खन्ध फैलकर सम्पूर्ण लोक प्रमाण होजाता है ऐसा गलन मलन गुन पुद्लों का है, खन्ध देश प्रदेश और पर्माणु इन च्यारोंही की स्थिति जघन्य येक समय है उत्कृष्टी असंख्याता कालकी है असंख्यात काल पीछे पर्माणुवोंका खन्ध हुआ सो विखर जाता है तथा खन्धसें अलग येकला रहा सो पर्माणु भी असंख्यात कालसें ज्यादह नहीं ठहरता है, ऐसाही पुद्गलों का परिणाम है सो भाव है इस लिए भाव पुद्गल असास्वता है और अनन्त गलन मलन रूप अनन्ती पर्याय है, ज्यो २ वस्तु पुद्गलों की होती है सो सब नास होती है वो भाव पुद्गल है परन्तु पुद्गलत्वपणा सास्वता है जसें सोनेको गालके गहना बनाया तो आकार का विनास पर-

न्तु सोनेका विनास नहीं वैसेंहीं पुद्गलोंकी वस्तुका विनास ले-किन पुद्गल का विनास नहीं होता है, आठ कर्म शरीर छाया तावडा प्रभाः क्रान्ति अन्धकार उद्योत ए रूप भाव पुद्गल असा-स्वते हैं, हलका भारी खरदरा मुलायिम तथा गोल लंबा आदि संस्थान घृत गुड आदि दसुं विघय वस्त्र आभूषण आदि अनेक वस्तु हैं सो सब भाव पुद्गल जानना, सैंकडों हजारों मण वल जाते हैं तथा ऊपजे हैं सो सब भाव पुद्गल हैं द्रव्यतो अग्नसें बालनेसें बलता नहीं और निपजता नहीं अर्थात् पुद्गलत्वपणा है सो द्रव्य है वो सास्वता है, ओर अनेक वस्तु पणे परिणमें वो भाव पुद्गल असास्वता है इसलिए पुद्गलको द्रव्यतः सास्वता और भावतः असास्वता श्री उतराध्ययन के छत्तीसमें अध्ययन में कहाहै इस में कोई शंका नहीं रखनी चाहिए, स्वामी भीखनजी कहते हैं अजीव पदार्थ को उलखानेके लिए ढाल जोड़के श्रीजी-द्वार नगरमें कही है सम्वत् अठारहसय पचपन वर्ष वैसाख बुद ५ सनीवार, यह अजीव पदार्थकी ढाल का भावार्थ मेरी तुच्छ बुद्धि प्रमाण कहा है ज्यो कोई अशुद्धार्थ हुआ: उसका मुजे बार बार मिच्छामि दुकडं है ।

आपका हितेच्छू

जौंहरी गुलाबचन्द लूणियां

॥ अथ तृतीयपुन्यपदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

पुन्य पदार्थ तीसरो, तिणसूं सुख मानै संसार । काम भोग शब्दादिक पामैं तिण थकी, तिणनें लोक जाणैं श्रीकार ॥ १ ॥ पुन्यरा सुख छै पु-

द्गल तणां, काम भोग शब्दादिक जाण । मींठा लागै छै कर्म तणें बसे । ज्ञानी तो जाणैं जहर समान ॥ २ ॥ जहर शरीर में तिहां लगे, मींठा लागै नीमपान । ज्यूं कर्म उदय थी जीवनें, भोग लागै अमृत समान ॥ ३ ॥ पुन्य रा सुख छै कारमा, तिण में कला म जाणों कांय । मोह कर्म बस जीवडा, तिणमें रह्या लपटाय ॥ ४ ॥ पुन्य पदार्थ शुभ कर्म छै, तिण री मूल न करणी च्हाय । ते यथा तथ्य प्रगट करूं, ते सुण ज्यो चितल्याय ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

नव पदार्थों में पुन्य पदार्थ तीसरा है पुन्य को संसारी सुख मान रहे हैं काम भोग शब्दादिक विषय जीवको पुन्योदय से मिल ती है सो उन्हें जीव सुख मयी जानरहे हैं परंतु पुन्य के सुख पु-द्गल मयी है सो काम भोग शब्दादिक कर्मों के बससे मिष्ट लगे हैं लेकिन ज्ञानी तो जहर समान जानते हैं जैसे जहर शरीर में व्यापने से नीमके पान मींठे लगते हैं वैसे ही मोहकर्म के वशीभूत जीव होके पुन्यके पुद्गलिक सुखों को अमृत समान मान रहे हैं परंतु पुन्य के सुख कारमा याने अथिर हैं इससे कुछ भी जीवकी गरज नहीं सरती है क्योंके पुन्य के सुखों में अधी होने से पाप का बन्ध होता है इसलिए कुछ करामात नहीं जानना पुन्य तो शुभ कर्म है इसकी बान्छा किंचित् भी नहीं करणा चाहिए, अब पुन्य पदार्थ का यथार्थ वर्णन करता हुं सो येकाग्र चित्त करके सुनो ।

॥ ढाल ॥

॥ अभियाराणी कहे धायनें ॥ तथा ॥ जीव मोह अनुकम्पा न आंणिए ॥ एदेसी ॥ पुन्य तो पुदग-

ल री पर्याय छै, जीवरै आयलागै छै ताम, हो लाल । ते शुभ पणे उदय हुश्रै जीवरै, तिणसूं पुद्गलरो पुन्य नाम, हो लाल पुन्य पदार्थ ओलखो ॥ १ ॥ च्यार कर्म तो एकान्ति पाप छै, च्यार कर्म छै पुन्यनें पाप हो लाल । पुन्य कर्म थी जीवनें, साता हुश्रै पण न हुवै संताप हो लाल ॥पुन्य॥२॥ अनन्ता प्रदेश छै पुन्य तणां, तेजीवरै उदय होवै आय हो लाल । अनन्तो सुख करै जीवनें, तिणसूं पुन्यरी अनन्त पर्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥ निर्वद्य जोग वर्तै जब जीवरै, शुभ पुद्गल लागै ताम होलाल । त्यां पुद्गल तणां छै जुवा२, गुण प्रमाणैं त्यांरा नाम होलाल ॥ पुन्य ॥ ॥ ४ ॥ साता वेदनी पणैं आय परिणम्यां, साता पणैं उदय हुवै ताम हो लाल । ते सुख साता करै जीवनें, तिणसूं साता वेदनी दियो नाम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५ ॥ पुद्गल परिणम्यां शुभ आउषा पणैं, घणो रहणौं वान्छै तिणठाम हो लाल । जाणैं जीविए पिण न मरिजीए, शुभ आउषो तिणरो नाम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ६ ॥ केई देवतानें केई मनुष्यरो, शुभ आयुष छै पुन्य

ताहि हो लाल । युगलिया तिर्यंचतेहनूं, आयुपदांसे छै पुन्य मांहि, हो लाल ॥ पुन्य ॥ ७ ॥ शुभ आयुषरा मनुष्य देवता, त्यारी गति अनुपूर्वी शुद्ध हो लाल । केई जीव पंचेन्द्री बिशुद्ध छै, त्यांरी जाति पिण निपुण विशुद्ध हो लाल ॥ पुन्य ॥ ८ ॥ शुभ नाम पणें आघपरिणम्यां, ते उदय हुवे जीवरे ताय हो लाल । अनेक वाना शुद्ध हुवे तेहसुं, नाम कर्म कह्यो जिनराय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ॥ ९ ॥ पंच शरीर छै शुद्ध निरमला, तीन शरीर निर्मल उपांग हो लाल । ते पामें शुभ नाम कर्म उदय थकी, शरीर उपांग सुचंग हो लाल ॥ पुन्य ॥ ॥ १० ॥ पहिला संघयणनां रूडा हाड छै, पहिलो संठाण रूडे आकार हो लाल । ते पामे शुभ नाम उदय थकी, हाडतें आकार श्रीकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ११ ॥ भला२ बर्ण मिलै जीवनें, गमता२ घणां श्रीकार हो लाल । ते पामै शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ १२ ॥ भला२ गन्ध मिलै जीवनें, गमता२ घणां श्रीकार हो लाल । ते पामें शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवे विविध प्रकार हो लाल

॥ पुन्य ॥ १३ ॥ भला२ रसमिलै जीवनैं गमता२ घणां श्रीकार हो लाल । ते पामैं शुभ नाम उदय थकी, जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ॥ १४ ॥ भला२ स्पर्श मिलै जीवनै, गमता २ घणां श्रीकार हो लाल । ते पामें शुभ नाम उदय थकी जीव भोगवै विविध प्रकार हो लाल ॥पुन्य॥१५॥
त्रसरो दसको छै पुन्योदय, शुभनाम उदयसें जा- ण हो लाल । त्यानै जुदा २ करि वर्णमूं, कीज्यो निर्णय चतुर सुजाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ १६ ॥ त्रस नाम शुभ कर्म उदय थकी, त्रस पणो पामें जीव सोय हो लाल । बादर शुभ नाम उदय हुयां, जीव चेतन बादर होय हो लाल ॥ पुन्य ॥१७॥ प्रत्येक शुभ नाम उदय हुयां, प्रत्येक शरीरी जीव थाय हो लाल । पर्याप्ता शुभ नाम कर्म थी, जीव पर्याप्तो हो जाय हो लाल ॥ पुन्य ॥ १८ ॥ शुभ- थिर नाम कर्म उदय थकी, शरीर नां अवयव दृढ थाय हो लाल । शुभ नाम शरीर मस्तक लगै, वय रूडा २ होयजाय हो लाल ॥ पुन्य ॥ १९ ॥ सौभाग्य नाम शुभ कर्म थी, सर्व लोकमें वल्लभ होय होलाल । सुस्वर शुभ नाम कर्मसैं, स्वर कंठ मीठो

होवै सोय हो लाल ॥ पुन्य ॥२० ॥ आदेज बचन शुभकर्मथी, तिणरो बचन मानें सहुकोय होलाल । जस किर्ति शुभ नाम उदय हुवां जस कीरत जगमें होय होलाल ॥ पुन्य ॥ २१ ॥ अगुरू लघू नाम कर्मसूं, शरीर हलको भारि नहीं लगात हो लाल । पराघात शुभनाम उदय थकी, आप जीते पैलोपामें घात हो लाल ॥ पुन्य ॥ २२ ॥ उस्वास शुभनाम उदय थकी, स्वासोस्वास सुखे लेवंत हो लाल । आताप शुभनाम उदय थकी, आप सीतल पैलो तपंतहो लाल ॥ पुन्य ॥ २३ ॥ उद्योत शुभनाम उदय थकी, शरीर उजवालो जान हो लाल । शुभ गइ शुभनाम कर्म सूं, हंस ज्यों चोखी चाल वखान हो लाल ॥ पुन्य ॥ २४ ॥ निर्माण शुभनाम उदय थकी, शरीर फोडा फुणगला रहित हो लाल । तीर्थंकर नामकर्म उदय हुवां, तीर्थंकर होवे तीन लोक वंदित होलाल ॥ पुन्य ॥ २५ ॥ कोई युगलिया दिक तिर्यंचनी, गतिनें अनुपूर्वीजाण होलाल । तेतो प्रकृति दीसैछै पुन्यतणी, ज्ञानी वधे ते प्रमाण होलाल ॥ पुन्य ॥ २६ ॥ पहिलो संघयण संठाण बरजनें, च्यार संघयण च्यार संठाण होलाल । त्यां

में तो भेल दीसैछै पुन्यतणों. ज्ञानी वधै ते प्रमाण होलाल ॥ पुन्य ॥ २७ ॥ जेजे हाड छै पहिला संघयणमें, तिणमांहिला च्यारां म्हांय हो लाल। त्यां नें जावक पापमें घालीयां, ते मिलतो न दीसैं न्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥ २८ ॥ जेजे आकार पहिला संठाण में, तिण मांहिला च्यारां म्हांय हो लाल। त्यानें जावक पाप में घालीयां, यो पिण मिलतो न दिसै न्याय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ॥ २९ ॥ ऊंच गौत पणें आय परिणम्यां, ते उदय आवै जीवरे ताम हो लाल। ऊंच पदवी पामें तिण थकी, ऊंच गौत छै तिणरो नाम हो लाल ॥पुन्य॥ ॥ ३० ॥ सघली न्यात थकी ऊंची न्यात छै, तिणरै कठैही न लागै छोत हो लाल। एहवाछै जे मनुष्य नें देवता, त्यांरो कर्म छै ऊंच गौत होलाल ॥पुन्य॥ ॥ ३१ ॥ जेजे गुण आवै जीवरै शुभ पणे, जेहवा छै जीवरा नाम हो लाल। तेहवाहिज नाम पुद्‌गल तणां, जीवतणों संयोगनाम ताम हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३२ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब पुन्य पदार्थ क्याहै तथा जीवके किस २ तरहें उदय आता है सो कहत हैं, पुन्य है सो पुद्‌गलों की पर्याय है यांने भाव

पुद्गल हैं रूपी हैं जीवोंके साथ होने से उन पुद्गलों का नाम पुन्य है वोह जीव के शुभपणें उदय होता है तब जीव को साता होती है, तात्पर पुन्य है सो शुभ कर्म है आठ कर्मोंमें से च्यार कर्म तो एकान्त पाप है और वेदनी आयुष नाम गौत्र यह च्यारों कर्म पुन्य पाप दोनूं हैं, अनन्त प्रदेशी पुद्गलों का खन्ध पुन्य कर्म मयी होके जीवके उदय होय तब अनन्त सुख करै इसलिए पुन्य की अनन्त पर्यायहै, निर्वध योग वर्त्तनेसें अनन्त पुद्गलोंका च्यार स्पर्शीया पुञ्ज जीव के लगते हैं उनहीं पुद्गलों का नाम पुन्य पृथक २ गुण प्रमाण हैं सो कहते हैं, साता वेदनी पणें परिणमन करिके सातापणे उदय होताहै इसलिए उनका नाम साता वेदनी पुन्य कर्महै, और जो शुभ आयुष कर्म पणे परिणम करके शुभ आयुष पणें उदय होता है उन कर्मों का नाम शुभ आयुष्यहैं, जिस आयुषमें घणांकाल तक रहणा वान्छे ऐसा विचारे कि मैं वडा सुखीहूं मेरी उमर सुखोंमें आरहीहै किसी तरहकी व्याधि नहीं है उस ही आयुषका नाम शुभ आयुष है, कितनेहीं देवता और मनुष्योंका शुभ आयुष है तथा केई तिर्यंच युगलियों का आयुष भी पुन्य के उदय से ही जान पडता है, और जो पुद्गलोंका पुञ्ज जीव के संग परिणमन कर उदय होनेसें अनेक तरहं की वस्तु प्राप्ति करताहै उनका नाम शुभ नाम कर्म हैं, ज्यो शुभ आयुष्यवन्त मनुष्य देवता हैं उनकी गति और अनुपूर्वी भी पुन्योदयसें ही हैं, पांच शरीरों के ज्यो शुद्ध निर्मल है वा तीन शरीरोंके जो उपाङ्ग निर्मल है वो शुभनाम कर्म के उदय से हैं, पहिला संघयण में ज्यो वजरसमान मजबूत हाड्डियां और पहिले संठाण में ज्यो अच्छा खूबसूरत आकार है वोह शुभनाम कर्म पुन्योदयसे हैं, तथा अच्छे २ वर्ण गन्धि रस स्पर्श जीव को मिलते हैं सो शुभ नाम कर्म पुन्य के उदय सें मिलते हैं, उन्हें जीव अनेक प्रकार से भोगता हैं, तथा पुन्य प्रकृति ४२ प्रकार से भोगमें आती है सो कहते हैं।

१ साता वेदनी . अर्थात् सुखसाता वेदना- वेदनी कर्मका उदय है

२ ऊंचगोत्र, कर्मसें ऊंचे दरजे का गोत्र पाता है।

३ देवगति नामकर्म सें देवता होता है।

४-देव अनुपूर्वी अर्थात् देवगति में जानेवाला जीवको अंत समय आती है।

५-मनुष्य गति नाम कर्म सें मनुष्य होता है।

६-मनुष्य अनुपूरवी, मनुष्य होनेवाला जीवको अंत समय आती है।

७-त्रस नाम कर्म के उदय सें ये जीव त्रस होता है अर्थात् चलना हलना होता हैं।

८-बादर नाम कर्म के उदय जीव सूक्ष्मताको छोड बादर अर्थात् नेत्रद्वारा देखने लायक शरीर पाता है।

९-प्रत्येक शुभ नाम कर्म सें प्रत्येक शरीरी होता है अर्थात् येक शुभ शरीर में येकही जीव होता है।

१०-पर्याप्ता शुभ नाम कर्म सें जीव यथा योग आहारादि पूरण परियायी होता है।

११-शुभ नाम कर्म सें अच्छा नाम पाता है।

१२-सोभाग्य नाम कर्म सें सौभाग्यवंत होता है।

१३-सुश्वर नाम कर्मसें श्वर यानें कंठ मींठे होते हैं।

१४-आदेज नाम कर्मसें आदेज वचनी होता है अर्थात् जिसका वचन प्रिय और प्रमाणिक होताहै।

१५-जसोकीरतीं नाम कर्मसें अधिक यसवंत होताहै।

१६-स्थिर शुभ नाम कर्मसें शरीरके अवय दृढहोते हैं।

१७-अगुरू लघुनाम कर्मसें शरीर अधिक हलका या अधिक भारी नहीं होता है।

१८-प्राघात शुभनाम कर्मसें संग्रामादि में जय प्राप्त करता है।

१९-उस्वास शुभनाम कर्मसें स्वासोस्वास अच्छी तरहें नैरोग्यता सें लेता है।

२०-आताप शुभनाम कर्मसें आप शीतल स्वभावी होता है और दूसरे उन्हें देखके तपता है अर्थात् जलता है।

२१-उद्योत शुभनाम कर्मसें शरीरकी कान्ति ज्योति उज्वल होती है।

२२-शुभगई शुभनाम कर्मसें हंस समान या गज़ समान अच्छी चाल होती है।

२३-निर्माण शुभनाम कर्मसें शरीर गूम्मडा फुनसियां रहित रहता है।
२४-पंच इंद्रिय शुभनाम कर्म सें पांचइंद्रिय नैरोग्यता पाता है।
२५-औदारिक शरीर शुभनाम कर्म सें मनुष्य और तीर्यंच का शरीर अच्छा होता है।
२६-वैक्रे शरीर शुभनाम कर्म सें देव शरीर तथा वैक्रे लब्धी सें किया हुआ शरीर अच्छा होता है।
२७-आहारिक शरीर शुभनाम कर्मसे आहारिक लब्धी का कीया हुआ शरीर अत्यन्त खूब सूरत होता है।
२८-तेजस शरीर शुभनाम कर्म सें पुद्गलोंको अच्छी तरहें पचाताहै।
२९-कामर्ण शरीर शुभनाम कर्मशें शुभ पुन्य मयी कर्मोंका संगी होता है।
३०-औदारिक उपान्ग शुभनाम कर्मसें ओदारिक शरीर के हात पांवह आदि अच्छे होते हैं।
३१-वेक्रे शरीर उपान्ग शुभनाम कर्मसें वेक्रे शरीर के हात पांव आदि उपान्ग अच्छे होते हैं।
३२-आहारिक उपान्ग शुभनाम कर्मसें आहारिक शरीरके हात पांवआदि उपान्ग अच्छे होते हैं।
३३-वज्र ऋषब संघयण नाम कर्मसे वज्र समान शरीर होताहै।
३४-सम चौरान्स संस्थान नाम कर्मसें समचोरस आकार होताहै।
३५-भलावर्ण १ भलागंध २ भलारस ३ भलास्पर्श ४ ये चारूं शुभनाम कर्मसें मिलता है।
३९-पंच इंद्रिय तिर्यंच युगलियाका आयुष कर्म।
४०-मनुष्य आयूष्य कर्म।
४१-देव आयुष्य कर्म
४२-तीर्थंकर नामकर्म से तीर्थंकर धर्मोपदेशक सुरासुर सेवक तीन लोक के पुज़नीक होते हैं।

उपरोक्त साता वेदनी कर्म १ ऊंच गोत्रकर्म २ ये दोनू तथा आयुष्य कर्मकी ३ शुभ प्रकृति और नाम कर्मकी ३७ प्रकृति सर्व ४२ प्रकार करिके जीव पुन्य भोक्ताहै, जैसी २ प्रकृति बयांलिसमें से भोगे गा उन्हें पुन्य प्रकृति जानना।

ज्यो युगलियादिक तिर्यचोंकी गति और अनुपूर्वी है सो पुन्य की प्रकृति ही है फिर निश्चय ज्ञानी कहै वोह सत्य हैं, पहिला संघयण बिना च्यार संघयणों में तथा पहिला संस्थान बिना च्यार संस्थानों में भी पुन्य प्रकृति का मेल मालुम होता है निश्चय ज्ञानी कहै सो सत्य है, क्योंके ज्यो २ हड्डियां पहिला संघयणकी हैं, वैसी बाकी च्यार संघयणों में भी होती हैं उन्हें एकान्ति पाप प्रकृति ही नहीं कहसकते हैं, और ज्यों आकार पहिला संस्थान का है उसही तरहे के संस्थान बाकी च्यारोंमें हैं वो भी एकान्ति पाप प्रकृति ही नहीं हैं उन्हें पाप की प्रकृति कहना यह न्याय नहीं मिलता है।

और चौथा पुन्यकर्म ऊंच गौत्र है सो उनके उदय से उत्तम पदवी पाते हैं ज्यो मनुष्य और देवता निरलान्छनी हैं वो स्वच्छ जाति हैं सो ऊंच गौत्र कर्म के उदय से हैं, तात्पर्य यह कि ज्यो २ गुन जीव के शुभ पणें हैं वैसाही नाम जीवका है सो जीवहै और वोही नाम पुद्गलोंका है सो अजीव पुन्य कर्म हैं पुद्गलों के संयोग से ही जीवके अच्छे २ नाम कहे जाते हैं इससें उन पुन्य मयी पुद्गलों का नाम भी अच्छे २ हीहैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

जीव शुद्ध हुओ पुद्गलथकी, तिणसूं रूडा २ पाया नाम हो लाल जीवनें शुद्ध कीधो छै पुद्गलां, त्यांरा पिण छै शुद्ध नाम ताम हो लाल॥पुन्य॥ २३। ज्यां पुद्गलां तणां प्रसंगथी, जीव बाज्यो संसार में ऊंच हो लाल। ते पुद्गल पिण ऊंचा बाजीया, तिणरो न्याय न जाणें भूंच हो लाल॥पुन्य॥ २४॥ पद्वी तीर्थंकर चक्रिवर्ततणीं, वासुदेव बलदेव

महंत हो लाल । वलि पद्वीमराडलिक राजातणी, सारी पुन्यथकी लहंत हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३५ ॥ पद्वी देवेन्द्र नरेन्द्रनी, बालि पद्वी अहमेन्द्रनी बखाण हो लाल । इत्यादिक मोटी मोटी पदवियां, सहु पुन्य तणों प्रमाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३६ ॥ जे जे पुद्गल परिणम्यां शुभ पणें, ते तो पुन्योदय सें जाण हो लाल । त्यां सूं सुख उपजै संसार में, पुन्यरा फल यह पिछाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३७ ॥ बाल्हा विछडिया आयी मिलै, सयणातणों मिलै संयोग हो लाल । पुन्य तणां प्रतापथी, शरीर में न व्यापै रोग हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३८ ॥ हाती घोडा रथ पायक तणी, चौरंगणी सेन्या मिलै आण हो लाल । ऋद्धि बृद्धि सुख सम्पदा मिलै, तेतो पुन्य तणों प्रमाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ ३९ ॥ खेत्तु वत्थूं हिरण सोनादिके, धन धान्य नें कुम्भी धातु हो लाल । द्विपद चौपदादि आवी मिलै, पुन्य तणों प्रताप साख्यात हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४० ॥ हीरा पन्ना माणक मोती मूंगीया, वलि रत्नारी जाति अनेक हो लाल । ते सघला मिलै छै पुन्य थकी, पुन्य विना मिलै नहीं येक हो लाल ॥ पुन्य ॥

४१ ॥ गमती २ विनयवंतजेस्त्री, ते तो अपछरैं उणिहार हो लाल । ते पुन्य थकीं आय मिलै, वलै पुत्रघणां श्रीकार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४२ ॥ वले सुख पामैं देवतां तणां, ते पूरा कह्या नहीं जाय हो लाल । पल्य सागरोपमलग सुख भोगवै, ते तो पुन्य तणौं पसाय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४३ ॥ रूप शरीर सुन्दर पणों, तिणरो वर्णादिक श्रीकार हो लाल । ते गमता लागै सर्व लोक नें, तिणरो बोल्यो गमैं वारम्बार हो लाल ॥ पुन्य ॥४४॥ जे जे सुख सघला संसारना, ते तो पुन्यतणां फल जाण हो लाल । ते कहि कहि नें कितरा कहुं । बुद्धिवन्त लीज्यो पिछाण हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४५ ॥ ए पुन्यतणां फल वरणविया, ते संसार लेखै श्रीकार हो लाल । त्यानैं मुक्ति सुखां सें मींढीयां, ये सुख नहीं मूल लिगार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४६ ॥ पुद्गलिक सुख छै पुन्य तणां, ते तो रोगीला सुख त्हाय हो लाल । आत्मिक सुख छै मुक्तिरा, त्यानें तो ओपमां नहीं कांय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४७ ॥ पांव रोगी हुवै तेहनें, खाज मींठी लागै अत्यंत हो लाल । ज्यूं पुन्य उदय हुवां जीवनें, शब्दादिक

सर्व गमता लागंत हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४८ ॥
सर्प डंक लाग्यां जहर परिगम्यां, मींठा लागै नीम
पान हो लाल । ज्यूं पुन्य उदय हुवां जीवनें, मींठा
लागै भोग प्रधान हो लाल ॥ पुन्य ॥ ४६ ॥
शेगीला सुख छै पुन्य तणां, तिण मैं कला म
जाणों लिगार हो लाल । ते पिण काचा सुख
असास्वता, त्यानें विणसतां न लागै बार हो ला-
ल ॥ पुन्य ॥ ५० ॥ आत्मिक सुख छै सास्वता,
त्यां सुखांरो नहीं कोई पार हो लाल । ते सुख रहै
सदा काल सास्वता, त्रिहुं काले येक धार हो लाल
॥ ५१ ॥ पुन्यतणी बान्छा कियां, लागैं
छै एकान्ति पाप हो लाल । तिणसूं दुःख पामैं
इण संसार में, बधतो जाय सोग संताप हो लाल
॥ पुन्य ॥ ५२ ॥ जिण पुन्य तणी बान्छा करी,
तिण बान्छा कामनें भोग हो लाल । त्यानें दुःख
होसी नरक निगोदरा, वले वाल्हांरो पडसी वियोग
हो लाल ॥ पुन्यं ॥ ५३ ॥ पुन्यतणां सुख छै
असास्वता, ते पिण करणी बिना नहीं थाय हो
लाल । निर्वंध करणी करै तेहनें, पुन्यतो सहजैं
लागे छै आय हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५४ ॥ पुन्यरी

बन्छा सें पुन्य नहीं नींपजै, पुन्यतो सहजैं लागे छै आय हो लाल । तेतो लागै छै निर्वद्य जोग सें, निरजरारी करणी सूं त्हाय हो लाल ॥पुन्य॥५५॥ भली लेश्या भला परिणामसें, निश्चयः ही निरजरा थाय हो लाल । जब पुन्य लागे छै जीवरै, सहज सभावै त्हाय हो लाल ॥पुन्य॥ ५६॥ जेकरणी करै निरजरातणी, पुन्य तणी मन मांही धार हो लाल । तेकरणी खोयने बापडा, गया जमारो हार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ५७ ॥ पुन्यतो चोस्पर्शी कर्म छै, तिणरी बान्छा करै ते मूढहो लाल । त्यां कर्म धर्म नहीं ओलख्यो, करि करि मिथ्यात्वनी रूढहो लाल ॥ पुन्य ॥ ५८ ॥ ज जे पुन्यथी वस्तु मिलै तिके, त्यानें त्याग्यां निरजरा थाय हो लाल । ज्यो पुन्य भोगवैबान्छी थको, तिणरै चिकणा कर्म बंधाय होलाल ॥ पुन्य ॥ ५९ ॥ जोडकीधी छै पुन्य ओलखायवा, श्रीजी द्वारा मंझार हो लाल । सम्वत् अठारह पंचावनें, जेठ सुदि नवमी सोमवार हो लाल ॥ पुन्य ॥ ६० ॥ पुन्यरी करणी निवध आज्ञासम्के, तिणरी सूत्र में छै साख होलाल, ते थोडी सी प्रगटकरूं, सुणज्यो चित्त ठिकाणें राख होलाल ॥ पुन्य ॥ ६१ ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव जिस पुद्गलों सें शुद्ध हुआहै उन पुद्गलों का नाम भी शुद्ध हैं जबकोई कहै पुद्गलों सें तो जीव मलीन हुआ और होरहा है तो पुद्गलों सें जीव शुद्ध कैसें होसक्ता है जिसका उत्तर यह है कि संसारिक जीवस शरीरी व्यवहारनय की अपेक्षाय शुद्ध होताहै जैसें कोई वस्तु भ्रष्टादि सें अशुद्ध होती है तो वो स्वच्छ जल आदि पदार्थ सें शुद्ध होजाती है वैसें ही पुन्य मयी शुद्ध पुद्गलों सें जीव उच्चपद पाके संसार में ऊंचे दरजे के मनुष्य या देवता गिने जाते हैं तो उनके प्रसंगसें पुद्गल भी ऊंचे कहलाते हैं, सो कहते हैं, तिर्थंकरकी पदवी चक्रिवर्तकी पदवी, वासु देवकी पदवी, वलदेवकी, मंडलीक राजाकी पदवी, तथा देवेन्द्रकी पदवी, अहमिन्द्रकी पदवी आदि वडी वडी पदवियां पुन्यके उदयसें जीव पाता है तवजीवभी संसार में ऊंचा कहलाया और वो पुन्य मयी पुद्गल ज्यो के जिनोंके उदयसें ऐसा हुआ सो पुद्गल भी ऊंचा कहलाया, ज्यों २ पुद्गल जीवके शरीर पणें या इन्द्रियोंके आकार पणें, वा रूप क्रान्ति अतिसयपणें परिणमे है वो सव पुन्य के उदयसे हैं, तथा प्यारे विछडे हुए मिलते हैं वा सज्जनों का संयोग मिलता है, निरोग शरीर पाता है, हस्ती घोडा रथ प्यादाः कटक, च्यार प्रकार सेना, ऋद्धि वृद्धी सुख सम्पदा आदि सव पुन्य के उदय सें मिलते हैं, अथवा क्षेत्र कहिए जमीन तथा जायदाद चांदी सोना धन धान्य कुम्भी धातु दोपद कहिए दासदासी तथा चोपद ज्यानवर आदि पुन्यके प्रतापसें मिलता है, तथा-हीरा पन्ना माणक मोती आदि अनेक तरह के रत्न और अति प्रिय मनोज्ञ रूपवती स्त्री पुत्र पोत्र आदि पुन्योदय से मिलते हैं, तथा देव लोकों में देव समान्धिया दिव्य प्रधान सुख हुकुमातादि भी प्रवल पुन्योदय सें पाते हैं, तात्पर्य ज्यो २ संसार के सुख हैं सो सव पुन्यके उदयसें हैं पुन्य विना संसारिक सुख कुछ भी नहीं मिलता है परंतु संसारिकसुख पुद्गलीक हैं सो सव असार और अनित्य हैं मोक्षके आत्मिक अनोपम सुखों के आगे ये सुख कुछ भी नहीं है जैसं पांव रोगीको खुजाल अच्छी लगैं, सर्पके

खायेहुए जहर व्यापितको नीमके पान मीठे लगे वसेंही जीवको कर्मोंके उदय सें पुन्य के पुदुगलिक सुख प्यारे लगते हैं, मगरज्ञानी पुरुष तो पुन्य और पाप इन दोनू हीं को वेड़ी जानते हैं पुन्य पाप दोनू हीं के क्षय होने सें असली सुख जो आत्मिक हैं सो प्राप्त होते हैं इसलिए पुन्य की बान्छा नहीं करणीचाहिए पुण्यकी बान्छा करणे सें एकान्ति पाप लगता है क्यों के ज्यो पुन्यकी वान्छा करी वोह काम भोग वान्छे, काम भोगों की वान्छा सें नर्क निगोदादि दुःख मिलते हैं इसलिए भव्य जनों को विचारणा चाहिए कि ये पुन्य के सुख असास्वते और असार है इन में कुछ करामात नहीं है, ये पुन्य के सुख भी निर्वध करणी करणे सें मिलते हैं परन्तु इन सुखों की आसा सें करणी नहीं करणी चाहिए, जब जीवके मन बचन काया के तीनों अथवा इन तीनों में से कोई एक जोग भला बर्तता है तथा भली लेश्या भला अदवसायों से अशुभ कर्मों की निरजरा होती है तब शुभ कर्म सहज में वंधते हैं जैसें गेहुं के साथ में खाखला स्वतह ही होता है वैसें निरजरा की करणी करणे सें पुन्योपारजन होता है, और ज्यो २ वस्तु पुन्योदय सें मिलती है उन्हें त्यागने सें अशुभ कर्मों की निरजरा होती है जिससें जीव निर्मला होके अनुक्रमे सर्व कर्म क्षय करि के सिद्ध अवस्था प्राप्त करता है, पुन्यतो चोस्पर्शी कर्म हैं पुन्य को ग्रद्धीपणे सें भोगने सें सचिकण पापोपारजन होता है; यह पुन्य पदार्थ को ओलखाने के लिए स्वामी श्री भीखनजी ने ढाल जोड करके कही है सम्वत् अट्ठारह सह पचपन वर्षे जेठ बुद नवमी सोमवार को श्री नाथद्वार शहर में कही है, सो इसका भावार्थ मैंनें मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार किया है इसमें जो कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे वारम्वार मिच्छामि दुक्कडं है, अब पुन्य किसतरहें सें और किस करणी के करणे सें होता है सो कहते हैं।

आपका हितेच्छु

जौंहरी गुलाबचन्द लूणीया

॥ दोहा ॥

नव प्रकारे पुन्य नीपजै, तेकरणी निर्वद्य जाण । बयालीस प्रकारे भोगवै, तिणरी बुद्धिवन्त कर-ज्यो पिछाण ॥ २ ॥ पुन्य निपजै तिण करणी मझे, निरजरा निश्चयजाण, जिण करणी में जिन आगनया, तिणमें शंकामत आंण ॥ २ ॥ केई-साधू बाजै नै नरा, त्यांदीधी जिन मार्ग नें पूठ, पुन्य कहै कुपात्र नें दियां, त्यांरीगई अभ्यन्तर फूट ॥ ३ ॥ काचो पाणी अणगल पावै तेहने, कहछै पुन्यनें धर्म । ते जिन मार्ग सें बेगला, भूला अज्ञा-नी भर्म ॥ ४ ॥ साधु बिना अनेरा सर्वनें, सचित अचित दियां कहै पुन्य ॥ बालि नाम लेवै ठाणा अं-गरो, ते पाठ बिना अर्थ छै सुन्य ॥ ५ ॥ किण हिक ठाणां अंगमें, ये घाल्यो छै अर्थ विपरीत । ते मघला ठाणांगमें नहीं, जोय करो तहतीक ॥६॥ पुन्य निपजै छै किण विधि, ते जोवो सूत्रैरै म्हांय । श्रीबीर जिनेश्वर भाषियो, ते सुणज्यो चित-ल्याय ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब पुन्य मयी शुभकर्म जीवके किस कर्तव्यके करणेंसे लगते हैं सो कहते हैं, पुन्य नवप्रकार से उपार्जन होताहै वोह करणी निर्व-

थहै; उसें जीव बयांलीस प्रकारसें भोगता है सो वर्णन पहली ढाल में किया ही है, बुद्धिवान जनोंको निर्पक्ष होके पुन्य और पुन्यकी करणी की पहिचानकरणी चाहिए, महानुभावो जिस करणीसें पुन्य निपजै है उस करणी सें अशुभ कर्मोंकी निरजरा निश्चय हा होती है और उसही करणी करणेकी श्रीजिनेश्वर देवोंकी आज्ञा है परंतु पुन्यक लिए करणी करणेकी आज्ञा नहीं है इसमें किञ्चित् भी शंका नहीं रखणी चाहिए, कितनेहीं साधु जैनी नाम धराके जिन कथित मार्ग से बिमुल होके कुपात्रोंको देने में भी पुन्य प्ररू-पतेहैं उनकी ज्ञानमयीचक्षु मिथ्यात्तमयी मोतियां बिन्दसें अच्छादित होरहे हैं सोकहते हैं सचित पानी जो अप्यकाय के-स्थावर एक बिन्दु में असंख्या जीव हैं और उस में वनस्पती के अनन्ते जीवों की नियमा है वो किसीको पानेसे धर्म और पुन्य होता है ऐसी कहने वाले अज्ञानी भ्रममें भूलेहुए हैं. कई कहते हैं साधुकोतो देनेसें तीर्थंकरादि पुन्य प्रकृतिका बन्ध होताहै और साधु विना सबको देनेसें अनेरी पुन्य प्रकृति बंधती है ऐसा श्री-ठाणांग सुत्रमे कहाहै सो ऐसा कहना मिथ्या है श्रीठाणां अंग सूत्रके मूलपाठ में तो ऐसा कहाही नहींहै, किसी २ ठाणां अंग का प्रतिमें अर्थमें उपरोक्त लिख्या है सो भी सवठाणां अंगकी में नहींहै इसकी तहकीक करणे सें मालुम होजायगा विवेकी जीवों को खयाल करना चाहिए कि जीव हिन्सा करिके साता उपजानें से धर्म और पुण्य कैसे होगा, अब शास्त्रों में पुन्यकी करणी का-वर्णन कहाहै सो कहते हैं, ।

॥ढाल॥

॥ श्रावक श्रीवर्द्धमानशरेलाल तथा ॥

॥ हूं तुज आगल स्यूं कहुं कन्नईया एदेशा ॥

पुन्य निपजै शुभजोगसूंरेलाल । ते शुभ जोग जिन आज्ञा म्हांय हो भविकजन ॥ ते करणीछै निर-

जरा तणीरेलाल, पुन्य सहजेंही लागैछै आथ हो भविकजन ॥ पुन्य निपजै शुभजोग सूंरे लाल ॥१॥ जेकरणी करै निरजरा तणी रे लाल, तिणरी आज्ञादे जगनाथ हो ॥ भ ॥ ते करणी करतां पुन्य निपजैरे लाल, ज्यों खाकलो हुवै गेहूंरी साथ हो ॥ भ ॥ पु ॥ ॥ २ ॥ पुन्य निपजैं तिहां निरजरा हुंअेरे लाल । ते करणी निरवद्य जाण हो ॥ भ ॥ सावद्य करणी सें पुन्य नहीं निपजैरे लाल । ते सुणज्यो चतुर सुजाणहो ॥ भ ॥ पु ॥ ३ ॥ लांबो आऊषो बंधै तीन बोलसूंरे लाल । ते आऊषोछै पुन्य मांयहो ॥ भ ॥ हिन्सा न करै प्राणीजीव रीरे लाल । बोलै नहीं मूसा वायहो ॥ भ ॥ पु ॥ ४ ॥ तथा रूप श्रमण निग्रंथनेंरे लाल । देवैं प्रासुक निरदूषण च्यारूं अहारहो ॥ भ ॥ यां तीन बोलासें ए पुन्य निपजैरेलाल । ठाणांग ती जाठाणा मंझारहो ॥ भ ॥ पु ॥ ५ ॥ हिन्सा कियां झूंठ बोलीयांरेलाल । बलि साधांनें देवै अशुद्ध आहार हो ॥भ॥ तिणसूं अल्प आऊषोबंधै तेहनेंरेलाल । ते आऊषो पाप मंझार हो ॥ भ ॥ पु ॥ ६ हिन्सा कियां झूंठ बोलीयांरेलाल साधांनें हेलै निन्दै हायहो ॥ भ ॥ आहार अम-

नोग्य अप्रियदियांरेलाल । अशुभ लांबो आऊषो बंधायहो ॥ भ ॥ पु ॥ ॥ ७ ॥ शुभ लांबो आऊषो बंधे इण बिधेरेलाल । ते आऊषोछै पुन्य मांयहो ॥ भ ॥ हिन्सा न करै प्राणी जीवनीरेलाल । वलें बोलै नहीं मूंसा बायहो ॥ भ ॥ पु ॥ ८ ॥ तथा रूपश्रमण निर्ग्रंथनेंरेलाल । करै बंदनानें नमस्कार हो ॥ भ ॥ प्रीतकारी बहिरावे च्यारूं आहारनेंरे लाल । ठाणां अंग तीजा ठाण मंझारहो ॥ भ ॥ ॥ पु ॥ ९ ॥ योहिज पाठ भगवती सूत्रमेंरेलाल, पांचमें शतक पंचमें उद्देस हो ॥ भ ॥ शंकाहुवै तो पूछ निर्णय करोरेलाल । तिणमैं कूड नहीं लवलेस हो ॥ भ ॥ पु ॥ १० ॥ बंदना करतां खपावै नींच गौतनेंरेलाल । ऊंच गौत बंधै बलि ताहि हो ॥भ॥ ते बंदना करनारी जिन आज्ञारे लाल । उतराध्ययन गुण तीसमां मांहिहो ॥भ॥पु॥११॥ धर्म कथा कहितां थकांरेलाल । बांधे कल्याण कारी कर्म हो ॥भ॥ उत्राध्ययन गुणतीसमैं अध्ययनमेंरेलाल । तिहां पिण निरजरा धर्महो ॥भ॥पु॥१२॥ बीसबोलां करी जीवरैरेलाल । कर्मांरी कोड खपायहो ॥ भ ॥ बांधे तिर्थंकर नाम कर्मनेंरेलाल ।

ज्ञाता आठमां अध्ययन मांयहो ॥ भ ॥ पु ॥ १३ ॥
सुभाहुकुमर आदि दसजणांरेलाल । त्यां साधांनें अ॰
शणांदिक बहिरायहो ॥ भ ॥ त्यां बांध्यो आऊषो
मनुषनूंरेलाल । श्रीविपाकसूत्ररे मांयहो ॥भ॥पु॥
॥ १४ ॥ प्राण भूत जीव सत्वनेंरलाल दुःख न दे
उपजावै सोग नांहि हो ॥ भ ॥ अभूरणियां नें
अटीप्पणियांरेलाल । अपिट्टणियां प्रतापनदेतांहि
हो ॥ भ ॥ पु ॥ १५ ॥ ए छहुं प्रकारे बांधे साता
बेदनीरेलाल । उलटा कियां असाता बंधायँ हो
॥ भ ॥ इम भगवती शतक सातमेंरेलाल । छट्टे
उद्देसै कह्यो जिनराय हो ॥ भ ॥ पु ॥ १६ ॥
करकस बेदनी बंधै जीवरै रेलाल । अठारह
पाप सेव्यां बंधायहो ॥ भ ॥ नहीं सेव्यां बंधे अकर
कस बेदनीरेलाल । भगवती सातमां सतक छट्टा
मांयहो ॥ भ ॥ पु ॥ १७ ॥ कालोदाइ पूछयो
भगवाननेंरलाल । सूत्र भगवतीमें रैसहो ॥ भ ॥
कल्याण कारी कर्म किण बिधः बंधैरेलाल । शात
में शतक दसमें उद्देसहो ॥ भ ॥ पु ॥ १८ ॥ अठारह
पाप स्थानक नहीं सेवियांरेलाल । कल्याणकारी
कर्म बंधाय हो ॥ भ ॥ अठारह पाप स्थानक

सेवेतेहसूंरेलाल । बंधै अकल्याण कारी कर्म आय हो ॥ भ ॥ पु ॥ १६ ॥ प्राणभूत जीव सत्वनेंरे-लाल । बहु शब्दें च्यारूं मांहि हो ॥भ॥ त्यां री करै अनुकम्पा दया आणिनेंरेलाल । दुःख सोग उप-जावै नांहिं हो ॥ भ ॥ पु ॥ २० ॥ अझूरणियां नें अपिट्टाणियां रेलाल । अटिप्पाणिया नें अप्रतापहो ॥ भ ॥ यां चौदा वोलांमें बांधै साता वेदनीरेलाल उलटा कियां असाता पापहो ॥ भ ॥ पु ॥ २१ ॥ महा आरंभ महा परिग्रहिरेलाल । वलिकरै पचेन्द्री नीघात हो ॥ भ ॥ मद्य मांस तणुं भक्षण करै रेलाल । तिण पापसें नर्कमें जातहो ॥भ॥पु॥२२॥ माया कपट गुडमाया करै रेलाल । वले बोलै मूंषा वाय हो ॥ भ ॥ कूडा तोला नें कूडा मांपा करै रेलाल । तिण पापथी तिर्यंच थायहो ॥भ॥पु॥२३॥ प्रकृतिरो भद्रिक वनीत छैरेलाल । दयानें अमच्छर भाव जाण हो ॥भ॥ तिणसें बांधै आऊषों मनुष नोंरेलाल । तकरणी निरवद्य पिछाणहो ॥ भ ॥ पु ॥ ॥ २४ ॥ पालै सराग पणों साधू पणों रेलाल । वले श्रावकरा व्रत बारहो ॥ भ ॥ बाल तपस्यानें अकाम निरजरा रेलाल । त्यांसूं पामैं सुर अव-

तारहो ॥ भ ॥ पु ॥ २५ ॥ काया शरल नें भाव शरल सूं रेलाल । बले भाषा शरल पिछाणहो ॥ भ ॥ जैहवो करै तेहवो मुखसूं कहै रेलाल । तिणसें शुभनाम कर्म बंधै आणहो ॥भ॥२६॥ ये च्यारूं हीं बोल वांकां बर्तियां रेलाल । तिणसूं बंधै अशुभ नाम कर्म हो ॥ भ ॥ ते सावद्य करणीछै पापरीलाल । तिणमें नहीं निरजरा धर्महो ॥ भ ॥ पु ॥ २७ ॥ जाति कुल बल रूपनूं रेलाल । तप लाभ सूत्र ठकुराय हो ॥भ॥ ए आठूं हीं मद नें करै नहीं रेलाल । तिणथी ऊंच गौत बंधाय हो ॥ भ ॥ पु ॥२८॥ ये आठूं हीं मद कियांशकां रेलाल । बांधै नीच गौत कर्म हो ॥ भ ॥ ते सावद्य करणी छै पाप रीलाल । तिणमें नहीं पुन्य नें धर्महो ॥ भ ॥ पु ॥ ॥ २६ ॥ ज्ञानाबरणी नें दरिशणाबरणी रेलाल । वले मोहनीयनें अन्तराय हो ॥ भ ॥ ये च्यारूं एकान्ति पापकर्म छै रेलाल । त्यां री करणी नहीं आज्ञामांय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ३० ॥ बेदनी आयुषो नाम गौत छै रेलाल । ए च्यारूं हीं कर्म पुन्य पाप हो ॥ भ ॥ तिणमें पुन्यरी करणी निरवद्य कही रेलाल । तिणरी आज्ञा दे जिन आपहो ॥ भ ॥

॥ पु ॥ ३१ ॥ यह भगवती शतक आठ में रेलाल । नवमां उद्देशा मांयहो ॥ भ ॥ पुन्य पाप तणी करणी तणों रेलाल । जाणों सम दृष्टी न्यायहो ॥ भ ॥ ॥ पु ॥ ३२ ॥ करणी करि निहाणों नहीं करै रेलाल । चोखा परिणामां समकित वन्त हो ॥ भ ॥ समाध जोग बरतै तेहनां रेलाल । क्षमांकरि परिशह खमंत हो ॥ भ ॥ पु ॥३३॥ पांचूंही इन्द्रियां बस कियांरेलाल । भलें माया कपट रहित हो ॥भ॥ अपासत्थापणां ज्ञानादिक तणां रेलाल । श्रमण पणां छै सहितहो ॥ भ ॥ पु ४२ ॥ हितकारी प्रवचन आदू तणां रेलाल । धर्म कथा कहै विस्तार हो ॥ भ ॥ यां दस बोलां बंधै जीवरै रेलाल । कल्याणकारी कर्म श्रीकारहो । भ । पु । ३५ । ते कल्याणकारी कर्म पुन्य छै रेलाल । तिणरी करणी निरबद्यजाण ॥हो॥भ॥ ठाणा अंग दसमें ठाणों कह्या रेलाल ते जोयकरि ज्यो पिछाण ॥हो॥भ॥पु ॥३६॥

॥ भावार्थ ॥

शुभयोग वर्तनेसैं पुन्योपार्जन होता है सो शुभयोग श्रीजिन आज्ञाके मांहिहै उनहीं शुभयोगोंसैं अशुभ कर्मोंकी निरजरा होती है और पुन्य ज्यो शुभकर्म हैं वो बंधते हैं, जिस कर्त्तव्यकी श्रीजिनेश्वर देव आज्ञादे उस निरबद्य कर्तव्य के करणेसैं जीवके़ प्रायत: निर्मल

होके पुन्योपार्जन करताहै, परंतु सावद्य करणी ज्यो जिनाज्ञा बाहरहै उससे पुन्य कदापि नहीं होताहै, ज्ञानावरणी दरिशनावरणी मोहनीय अंतराय ये च्यार कर्म तो पापही हैं, और नाम गौत्र वेदनी आयुष्य ये च्यार कर्म पुन्य पाप दोनूंहै सो कैसें बंधते हैं उनका वर्णन शास्त्रों में कहा सो कहते हैं। पुन्यमयी दीर्घ आयुष कर्म तीन प्रकार सें बंधताहै श्रीठाणा अंग सूत्र के तीसरे ठाणे कहा हैं हिन्सा न करणे सें १ झूंठ न बोलनें सें २ तथा रूप श्रमण निग्रंथको प्रासुक निर्दूषण च्यार प्रकारका आहार देनेसें दिर्घायु कर्म बंधताहै, और हिन्सादि तीनों कर्तव्य सें अल्प आयु कर्म बंधता है सो पापमयीहै, तथा शुभ दीर्घायु भी हिन्सा न करणे सें १ झूंठ न बोलने सें २ तथा रूप साधू मुनिराजको वंदना नमस्कार करने से प्रीतकारी च्यारूं आहार बहरानेसे ३, और अशुभ दीर्घायु कर्म हिन्सादि तीनों कर्तव्यों के करणे सें बंधताहै, ऐसा ही पाठ श्रीभगवती के पांच में उद्देसेमें भी कहा है। गौत्र कर्म के दो भेद हैं येक तो ऊंच गौत्र सो पुन्यहै और दूसरा नींच गौत्र वो पापहै, साधू मुनीराजों को वंदना करणे सें नींच गौत्र को खपाते हैं और ऊंच गोत्र बांधते हैं श्री उत्तराध्ययन २९ में अध्ययन में कहा है, तथा धर्म कथा कहने सें कल्याणकारी कर्म बंधते हैं सो गुण तीसमां अध्ययन में कहा है, ऊंच गोत्र बंधने का कारण वंदना करना है, कल्याणकारी कर्म का कारण धर्म कथा कहना है इन दोनूं ही कर्त्तव्यों की जिन आज्ञा है और निरजरा धर्म है। बीस बोलकारके जीव पूर्व संचित कर्मों की कोडि खपाके तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है ऐसा श्री ज्ञाता सूत्र के आठ में अध्ययन में कहा है। श्री सुख विपाक सूत्र में अधिकार है कि दस जनों नें साधू मुनिराजों को शुद्ध निर्दोष आहार देनें सें प्रति संसार करिके मनुष्य का आयुष बांधा है सो पुन्य है। तथा श्री भगवती सूत्र के सातमा शतक के छट्ठे उद्देसे गौतमस्वामी नें श्री भगवान सें पूछा है हे प्रभू साता वेदनी कर्म कैसें बंधता है तब भगवत नें फरमाया है प्राण भूत जीव सत्व को दुःख न देनेसें, सोग न उपजाने सें, न झूराने सें, न रुलाने सें, न पीटणे सें, तथा प्रतापना न देनेसें, साता वेदनी कर्म बंधता है और

दुःख देनेसें यावत प्रतापना उपजानें सें असाता वेदनी कर्म बंधता है। तथा इस ही उद्देसे में कहा है अट्ठारह पाप सेने सें करकस वेदनी और न सेन सें अकरकस वेदनी बंधता है। कालोदाई मुनी श्री भगवान सें प्रश्न किया है कल्याण कारी और अकल्याण कारी कर्म जीव कैसें बांधता है तब भगवन्त नें उत्तर फरमाया है कि अठारह पापस्थानक सेने सें अकल्याणकारी कर्म और न सेने सें कल्याणकारी कर्म बंधता है श्री भगवती सूत्र में अधिकार है, कल्याणकारी कर्म पुन्य है और अकल्याणकारी कर्म पाप है। आयुष्य कर्म च्यार प्रकार का है—नारकी का, तिर्यंचका, मनुष्य का, देवता का, जिस में नारकी तिर्यंच का आयुष्य तो पाप है और मनुष्य देवता का आयुष्य पुन्य है सो च्यारों प्रकार का आयुष्य कर्म कैसें बांधता है सो अधिकार श्री भगवती सूत्र में कहा है सो कहते हैं—

१—महा आरंभसें, महापरिग्रहसें, पंचेन्द्री की घातकरनें सें, मद्य मांस भोगने सें, नारकी का आयुष्य बंधता है।

२—मायाचार सें, गूढ माया कपट करनें सें, झूठ बोलने सें, असत्य तोलने सें या असत्य नांपनें सें, तिर्यंचका आयुष्य बंधता है।

३—भद्रिक प्राकृति सें, सुवनीत पणें सें, जीवों की दयासें अमत्सर भाव सें, मनुष्य का आयुष्य बंधता है।

४—सराग संयम पालन सें, श्रावक पणां पालने सें, बाल तपस्या करने सें, अकाम निरजरा सें, देवता का आयुष्य बंधता है।

तथा कहा है काया का शर्ल पणे सें भाषा का शर्ल पणे सें, जैसा करै वैसा कहनें वाला ऐसा सत्यवादी पणे सें, शुभनाम कर्मोपार्जन होता है, और इन्हीं बोलों को उलटे करने सें अशुभ नाम कर्मोपार्जन करता है।

जाति का, कुल का, रूप का, तप का, लाभ का, सूत्र का, ठकुराई का, इन आठों का मद याने अभिमान करने सें नीच गौत्र कर्म बंधता है और न करने सें ऊंच गौत्र कर्म बंधता है। तात्पर्य यह कि ज्ञानावरणी दरिशना वरणी मोहनीय और अंतराय यह

च्यार कर्म तो एकान्ति पाप कर्म हैं इन की करणी तो सावद्य है तथा आज्ञा बाहर है। और वेदनी नाम गौत्र आयुष्य ये च्यार कर्म पुन्य पाप दोनूं हैं जिस में पुन्य की करणी तो निर्वद्य और आज्ञा मांहि है, पाप की करणी आज्ञा बाहर है, यह पुन्य पाप की करणी का अधिकार श्री भगवति सूत्र के आठमां शतक के नवमां उद्देसा में विस्तार पूर्वक कहा है जिस का न्याय समदृष्टी जानते हैं। करणी करिके पुन्य के सुखों का निधान न करें। भले परिणाम समजोगवरतें, परिशह उपसग समपरिणाम सें खमें, पांचों इन्द्रियां को वस करे, माया कपट रहित हो, ज्ञान की उपासना करें, श्रमण पणा सहित हो, जिस को आठ प्रवचन माताके हितकारी हो, स विस्तार धर्म कथा कहै, इन दस बोलों सें कल्याणकारी कर्म बंधता है यह करणी निरवद्य है, और यही बोल उलटा करणें सें अकल्याण कारी कर्म बंधता है सो करणी सावद्य है, ये दसों बोल ठाणांग में कहे हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

अन्न पुराय पांण पुराय कह्यो रेलाल । लयण सयण वस्त्र जांण हो ॥भ॥ मन वचन काया पुन्य छे रेलाल । नमस्कार नवमूं पिछाण हो ॥ भ ॥३७॥ पुन्य बंधे यह नव प्रकार सें रेलाल । ते नवूं ही निरवद्य जाण हो ॥ भ ॥ नव बोलां में जिन जीरे आगन्यारे लाल। तिणरी बुद्धिवंत करिज्यो पिछाण हो ॥ भ ॥ पु ॥ ३८ ॥ कोई कहे नव बोल समचय कह्यारे लाल । सावद्य निरवद्य न कह्या ताम हो ॥ भ ॥ सचित अचित पिण नहीं कह्यारे लाल

पात्र कुपात्र नहीं नाम हो ॥ भ ॥ पु ॥ ३९ ॥
तिणसूं सचित अचित दोनूं कह्यारे लाल । पात्र
कुपात्र कह्या ताम हो ॥ भ ॥ पुन्य निपजै दीधां
शकल नेंरे लाल । ते झूठ बोलै सूत्रनूं ले २ नांम ॥
हो ॥ भ ॥ पुन्य ॥ ४० ॥ कहै साधु श्रावक
पात्र नें दियां रे लाल । तीर्थंकर नामादि पुन्य
थाय हो ॥ भ ॥ अनेग नें दान दियां थकां रेलाल
अनेरी पुन्य प्रकृती बंध आय हो ॥भ॥ पु ॥४१॥
इम कहै नाम लेवै ठाणा अंगनूं रेलाल । नवमां ठाणा
में अर्थ दिखाय हो ॥ भ ॥ त अर्थ अण हुंतो
घालियोरे लाल । तिणरी भोलां नैं खबर न कांय
हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४२ ॥ ज्यो अनेरानें दियां पुन्य
निपजैरे लाल । जवटलियों नहीं जीव येक हो ॥
भ ॥ कुपात्र नें दियां पुन्य किहांथकी रेलाल ।
थे समझो आणि विवेक हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४३ ॥
पुन्यरा नव बोल समुचै कह्या रेलाल । उणठामें
तो नहीं छै निकाल हो ॥ भ ॥ वंदना व्यावच
पिण समुचै कह्यारे लाल । ते बुद्धिवंत लीज्यो
संभाल हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४४ ॥ बंदना करतां ख-
पावै नींच गौत नैंरे लाल । वले ऊंच गौत बंधा-
य हो ॥ भ ॥ तीर्थंकर गौत बांधै व्यावच्च कियां रे
लाल । ते पिण समुचै बोल कह्या छै त्हाय हो ॥भ॥
॥ पु ॥ ४५ ॥ तीर्थंकर गौत बंधै बीस बोल सें

रेलाल । त्यां में पिण समुचै बोल अनेक हो ॥ भ ॥ समुचै बोल घणां छै ।सिद्धान्त में रेलाल । ते कुण समझै बिगर विवेक हो ॥ भ ॥पु॥४५॥ ज्यो शकल नें दीयां अन्न पुन्य निपजै रेलाल । तो नवों ही समुचै इम जाण हो ॥ भ ॥ हिव निर्णय कहूं छूं तेहनूं रेलाल । ते सुण ज्यो चतुर सुजाण हो ॥भ॥ पु ॥४६॥ अन साचित अचित दीधां शकल नें रेलाल । ज्यो पुन्य निपजै छै ताम हो ॥ भ ॥ तो इम हिज पुन्य पाणीं दियां रेलाल । लैण सैण वस्त्र पुन्य आम हो ॥ भ ॥ पु ॥४७॥ इम हिज मन पुन्य समुचै हुवै रेलाल । तो मन भूंडो वरतायां हीं पुन्य थायहो ॥ भ ॥ बचन पिण समुचै हुवै रेलाल । तो भूंडो बोल्यां हीं पुन्य बंधाय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४८ काया पुन्य पिण समुचै हुवै रेलाल । तो काया सुं हिन्सा कियां पुन्य होय ॥भ॥ नमस्कार पुन्य समुचै हुवै रेलाल । तो सकल नें नम्यां पुन्य जोय हो ॥ भ ॥ पु ॥ ४९ ॥ मन बचन काया मांठा वर्तियां रेला-ल । ज्यो लागै छै एकान्ति पाप हो ॥ भ ॥ तो नवूं हीं बोल इम जाणि ज्यो रेलाल । उथप गई

समुचैरी थाप हो ॥ भ ॥ पु ॥ ५० ॥ मन व-
चकाया सूं पुन्य नींपजै रेलाल । ते निरवद्य वर्त्यां
होय हो ॥ भ ॥ तो नवूं हीं बोल इम जाणिज्यो
रेलाल । सावद्य में पुन्य नहीं कोय हो ॥ भ ॥
पु ॥ ५१ ॥ नमस्कार अनेरा नें कियां रेलाल ।
ज्यो लागै छै एकान्ति पाप हो ॥ भ ॥ तो अ-
न्नादिक सचित दीधांथकां रेलाल । कुण करसी
पुन्यरी थाप हो ॥ भ ॥ पु ॥ ५२ निरवद्य करणी
सुं पुन्य नींपजै रेलाल । सावद्य सूं लागै छै पाप
हो ॥ भ ॥ ते सावद्य निरवद्य किम जाणिए रेला-
ल ॥ निरवद्य में आज्ञादे जिन आपहो ॥ भ । पु ।
॥ ५३ ॥ अन्नपाणी पात्रनें वहिरावियां रेलाल । लै-
णा सैण वस्त्र वहराय हो ॥भ॥ त्यांरी श्रीजिन देवै
आगन्या रेलाल । तिण ठांमें पुन्य वंधायहो ॥ भ ॥
॥ पु ॥ ५४ ॥ अन्न पाणी अनेरा नें दियां रेलाल
लैण सैण वस्त्र दे त्हायहो ॥भ॥ तिणरी देवै नहीं
जिन आगन्या रेलाल । तिणसूं पुन्य किहांथी वंधा
यहो ॥ भ ॥ ५५ ॥ सुपात्रनें दियां पुन्य नीपजै
रेलाल । ते करणी जिन आज्ञा मांयहो ॥ भ ॥ अ-
नेरानें दियां पुन्य किम निपजै रेलाल । तिणरी जि-

न आज्ञा नहीं कांयहो ॥ भ ॥ पु ॥ ५६ ॥ ठाम २
सूत्रमें देखल्यो रेलाल । निरजरा ने पुन्यरी करणी
एकहो ॥ भ ॥ पुन्य हुवै तिहां निरजरा हुवै रेलाल
तिहां जिन आज्ञा छै विसेक हो । भ ॥ पु ॥ ५७ ॥
नव प्रकारे पुन्य नींपजै रेलाल । ते भोगवै वयां-
लीस प्रकार हो ॥ भ ॥ पुन्य उदय हुयां जीवरे
रेलाल । सुख साता पामें संसार हो ॥ भ ॥ पु ॥
॥ ५८ ॥ इण पुन्य तणां सुखकारमां रेलाल । विण-
सतां नहीं लागै वारहो ॥ भ ॥ तिणरी बान्छा नहीं
किजीए रेलाल । ज्युं पामूं भव जल पार हो । भ । पु-
॥ ५६ ॥ जिण पुन्य तणी बान्छा करी रेलाल । तिण
बान्छया कामनें भोग हो ॥ भ ॥ संसार बधै कांम भो-
ग सुं रेलाल । पामें जन्म मरणनें सोग हो
॥ भ ॥ पु ॥ ६० ॥ बान्छा तो कीजे येक मुक्ति-
री रेलाल । और बान्छा न कीजे लिगार हो ॥
भ ॥ जिण पुन्य तणीं बान्छा करी रेलाल । ते
गया जमारो हार हो ॥ भ ॥ पु ॥ ६१ ॥ सम्वत्
अठारह तयांलीस में रेलाल । कार्तिक सुदि चोथ
गुरूवार हो ॥ भ ॥ पुन्य निपजे ते ओलखायवा
रेलाल । जोड कीधी कोठारया मंझार हो ॥ भ ॥ पु
॥ ६२ ॥ इति पुन्य पदार्थ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुन्य नव प्रकार सें बंधता है और जीव उसें बयांलीस प्रका-र सें भोगता है पुन्य बंधने के नवबोल श्री ठाणांग के नव में ठाणें कहे हैं परंतु बुद्धिवान जनों को विचारणा चाहिए कि येह नव बोल कोनसे हैं और इन सें पुन्य किसतरहें बंधता है, कोई कहते हैं नव बोल समुचै कहे हैं सावद्य निरवद्य या सचित अचित और पात्र कुपात्र का नाम उस जगह नहीं कहा है इसलिए सचित अचित दोंनूं तरहें का अन्न सब को देनेसें पुन्य होता है, साधू श्रावक को देनेसें तो तिर्थंकरादि पुन्य प्रकृति का बंध है और बाकी को देनेसें अनेरी पुन्य प्रकृति बंधती है, ठाणा अंग सूत्र में लिखा है ऐसा कहते हैं, जिसका उत्तर यह है कि ठाणां अंग सूत्र के मूल पाठ में तो कहीं भी ऐसा नहीं कहा है, किसी २ प्रति में अर्थ करने वालोंने ऐसा अर्थ लिखा है सो जिन मात सें विरुद्ध हैं, अव्वल तो समुचै पाठ सें यह अर्थ नहीं होसक्ता कि अन्न पुन्ने कहा तो अन्न सचित हो या अचित हो लेने वाला सुपात्र हो या कुपात्र हो अन्न के देनेसें हीं पुन्योपार्जन होता है यदि अन्न पुन्ने का उपरोक्त अर्थ समझा जाय तो उत्राध्ययन में कहा है वंदना करनेसें नीच गोत्र को क्षय करिकै ऊंच गोत्र को बांधे, तो फिर इस जगहें भी ऐसा समझना चाहिए कि सबको वंदना करने सें नीच गोत्र क्षय होके ऊंच गौत्र का बंध होता है क्योंकि उस जगहें भी किसी का नाम नहीं कहा है, और वैयावच करिनेसें तिर्थंकर गोत्र बांधे ऐसा कहा है तो इसका अर्थ भी यही हुवा कि सबकी वैयावच करनेसें उत्कृष्ट भांगे तिर्थंकर गोत्र बंधता हैं, किन्तु यहां नहीं नाम न आने सें ये अर्थ कदापि नहीं हो सक्ता है, यहो क्यों समुचै बोलतो शास्त्रों में अनेक आये हैं परंतु निरविवे-की जीवों को यथा तथ्य समझ नहीं पडती है इसलिए अर्थ की जगहें अनर्थ करिके जिन आज्ञा बाहर का कर्तव्य सें धर्म पुन्य प्ररूपते हैं, परंतु विवेकी जीवों को विचारणा चाहिए कि ज्यो अन्न सचित अचित सकल को दिये पुन्य होतो ऐसे हीं पाती

सब को पायें पुन्य हुआ तथा ऐसें ही लेण कहिए जगहें जमीन सैंण कहिए सयन पाटबाजोटा आदि, वत्थ कहिए वस्त्र भी सकल को दिये पुन्य हुआ तो सकल में वेस्यां कसाइ आदि सब जीव आगये तो फिर उनकी श्रद्धासें तो किसी को किसही तरहें की बस्तु देनेसें पुन्यही होता है किन्तु देनेसें पाप तो होता ही नहीं है सब को देनेके परिणाम अच्छेही है, तो फिर यही क्यों जैसा अन्न पुन्य समुचै है वैसाही मन वचन , काया पुन्य भी समुचै ही है. मन भला प्रवर्त्तै तोभी पुन्य और बुरा प्रवर्त्तै तोभी पुन्य वचनसें प्रियकारी कहे तोभी पुन्य और कुबचन गाली गलोच आदि बोलैं तोभी पुन्य, और काया भली प्रबर्तावै तोभी पुन्य तथा बुरी प्रबर्तावै तोभी पुन्य तो फिर काया सें जीव न मारे तो पुन्य और मारे तोभी पुन्य, क्योंकि उस जगहें तो भली बुरी का नाम नहीं कहा है सिर्फ इतनाहीं कहा है काया पुन्ने, यहि क्यों फिरतो नमस्कार पुन्य भी ऐसेंहीं समझना, कि कुत्ते कव्वे वेस्यां कसाई आदि सब जीवों को नमस्कार करनेसें पुन्योपारजन होता है । परंतु नहीं २ ऐसा नहीं समझना चाहिए, सतपुरुष और गुणी जनों को ही वंदने सें पुन्य होता है निरगुणी कुपात्रों को वंदना करनेसें तो पापहीं होगा, ऐसें हीं मन वचन काया भली परे निरवद्य कर्त्तव्य में वरतनें सें पुन्य होता है परंतु सावद्य जिन आज्ञा बाहर का मन बचन काया के जोग वरताने सें पुन्य बंध नहीं होता पापही का बंध है, नवों हीं बोलों को इसही माफिक समझना चाहिए । जैसें मन वचन काया के जोग सावद्य वरताने सें पुन्य नहीं वैसें हीं अन्न पानी सचित देनेसें पुन्य नहीं । जिसकार्य की जिन आज्ञा है वोहकार्य निर्वद्य है और जिस कार्य की जिन आज्ञा नहीं वो कार्य सावद्य है, सावद्य कार्य सें कदापि पुन्य नहीं बंधता है सावद्य सें तो पापही का बंध है, नवोंही प्रकार जिन आज्ञा माहि और निरवद्य हैं, साधूमुनिराजों को कल्पै सोही वस्तु इस जगहें बताई है यदि सकल जीवों को देने सें पुन्योपारजन होता तो परिग्रह पुन्ने भी कहते आभूषण तथा गाय भैंस आदि अनेक वस्तुवों का नाम बतलाते, परंतु बतलावें कैसें परि-

ग्रहादि अनेक वस्तुओंके देने से पुन्य कदापि नहीं होता है साधू विना संसारी जीवोंको देना लेना संसारिक व्यवहार तथा सावध कर्त्तव्य है जिसकी श्रीजिनेश्वर तथा पंच महाव्रत धारी शुद्ध साधू आज्ञा नहीं देते हैं और आज्ञा बाहरका कर्त्तव्यों से धर्म पुन्य नहीं होता है, जिन आज्ञा बाहरका दानसे तो पापही होता है, संसार में संसारी जीव परस्पर अनेक तरहें से देन लेन करते कराते हैं परन्तु संसारिक मार्ग है मुक्ति मार्ग नहीं है। प्रियवरो पुन्य है सो शुभ कर्म है और कर्म है सो मुक्ति पदको बाधा देने वाला है पुन्य पाप दोनूं को क्षय करने से मुक्ति पद मिलता है, पुन्यके सुख तो कारमे हैं विनास होते देर नहीं लगती है इसलिए यदि ज्यो तुम्हें भवोदधि से पार उतरना है तो पुन्यकी वान्छा मत करो निकेवल मोक्षाभिलाषी होके निरवद्य करणी करो जिससे पूर्व संचित पाप कर्मोंकी निरजरा होके सिद्धपद जलद पावोगे; सम्वत् अठारह सह तयांलीस की सालमें कार्तिक सुदि चौथ गुरूवार को पुन्य निपजने का उपाय ढाल ओढके स्वामी श्री भीखनजी मेवाड़ देशान्तरगत कोठारया ग्राम में कहा है। इति पुन्योपारजनकी करणी की ढालका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धया नुसार किया है इसमें कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे त्रि-विध २ मिच्छामि दुक्कडं है।

आपका हितेच्छु

श्रावक गुलाबचन्द लूणिया

॥ अथः चतुर्थम् पाप पदार्थम् ॥

॥ दोहा ॥

पाप पदार्थ पांडवो, ते जीवनें घणों भयंकार।
ते घोर रुद्र विहामणो; जीवनें दुःख तणो दातार॥१॥
ते पाप तो पुद्गल द्रवछै, त्यांनें जीव लगावै

ताम । तिणसे दुःख उपजैकै जीवनें. त्यांरो पाप कर्म छै नाम ॥ २ ॥ जीव खोटा २ कर्तव्य करै जब पुद्गल लागै ताम । ते उदय हुआं दुःख उपजे, ते आप कमाया कांम ॥ ३ ॥ पाप उदयथी दुःख हुऔ जब कोई मत करिज्यो रोस । किया जिसा फल भोगवै, पुद्गलनों नहीं दोस ॥४॥ पापकर्म नें करणी पापरी, दोनूं जुदी २ छै ताम । ते यथा तथ्य प्रगट करूं, सुणिज्यो राखि चित ठाम ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

नव पदार्थोंमें पाप पदार्थ चौथा है सो पाडवा कहिए अत्यंत खराब है, जीव को भयकारी और दुःखोंका दायक है, पाप है सो पुद्गल द्रव्य हैं जीव उन्हे अशुद्ध कर्तव्य करिके लगाता है उदय आनेसे अनेक प्रकार सें दुःखी होताहै तो पाप मयी पुद्गलों का दोष नहीं समझना चाहिए क्यों के आपका कमाया हुआ काम हैं जैसा किया वैसा भोगनाही पडेगा हिन्सा झूंठ चोरी आदि कर्तव्यों से अशुभ पुद्गल जीव के लगते हैं उन पुद्गलोंका नाम पाप कर्म है और ज्यों कर्तव्य किया वो पापकी करणी है जीवके परिणामहै इसलिये पाप और पापकी करणी अलग २ है जिसें यथार्थ प्रगट करिके कहते हैं सो एकाग्रचित्त करिके सुनो ।

॥ ढाल ॥

॥ या अनुकम्पाजिन आज्ञामें एदेसीमें ॥

घणघातिया च्यार कर्म जिन भाख्या । ते आभ पडल बादल जिमजाणं ॥ त्यां निजगुन जीवतं-

गा ते बिगाड्या । चंद्र बादल ज्यू जीव कर्म ढंकाणुं ॥ पाप कर्म अंतः करण ओलखीजे ॥ १ ॥ ज्ञाना-वरणीनें दरिशनावरणी । मोहनीय नें अंतरायछै तांम ॥ जीवरागुन जेहवा २ विगाड्या । तेहवा २ छै कर्मांरानाम ॥ पा ॥ २ ॥ ज्ञानावरणी कर्मज्ञान न आवादे । दरिशना वरणी दरिशन आवादे नाहिं ॥ मोहनीय जीवनें करै मतवालो ॥ अंतराय आछी वस्तु आडी छै ताहि ॥ पा ॥ ३ ॥ ये कर्म तो पुद्गलरूपी चौस्पर्शी । त्यांने खोटी करणी करि जीव लगाया ॥ त्यांरे उदय जीवरा खोटा नाम । तेहवाहि खोटा नाम कर्म कहाया ॥ पा ॥ ४ ॥ यां च्यार कर्मांरी जुदी २ प्रकृति । जुदा २ छै त्यांरा नाम ॥ त्यांसें जुदा २ जीवरा गुण अटक्या । त्यांरो थोडोसो विस्तार कहुंछुं ताम ॥ पा ॥ ज्ञानावरणी री पांच प्रकृतिछै । तिणसूं पांचूंहीं ज्ञान जीव नहीं पावै । मति ज्ञानावरणी मति ज्ञानरै आडी । श्रुति ज्ञानावरणी श्रुतिज्ञान न आवै ॥ पा ॥ ६ ॥ अव-धि ज्ञानावरणी अवधिज्ञान नें रोकै । मन परयाय-वरणी मन पर्यायरै आडी ॥ केवल ज्ञानावरणी के-वलज्ञान नें रोकै । यां पांचांमें पांचमी प्रकृति जाडी

॥ पा ॥ ७ ॥ ज्ञानाबरणी कर्म च्चयोपस्म होवै ।
जवतो पामें छै जीव च्यार ज्ञान । केवल ज्ञानाबरणी
च्चयोपस्म न होवै । या तो च्चय हुआं पामें छै
केवल ज्ञान ॥ पा ॥ ८ ॥ दरिशनावरणी कर्मरी
नव प्रकृति छै । तेतो देखवा नें सुणवादिक आडी ॥
जीव नें जावक करदेवैं आंधो । त्यांमें केवल दरि-
शनाबरणी सबमें जाडी ॥पा॥९॥ चक्षु दरिशना-
बरणी कर्म उदयसुं । चक्षुरहित होवै अंध अयाण ॥
अचक्षु दरिशनाबरणी कर्म रै जोगै । च्यारूं इंद्रिया
री पडजाय हांण ॥ पा ॥ १० ॥ अवधि दरिशना
वरणीय कर्म उदयसें, अवधि दरिशण पामें नहीं
जीवो । केवल दरिशना बरणीय कर्म प्रसंगे, उपजे
नहीं केवल दरिशण दीवो ॥ पा ॥११॥ निद्रा
सूतो सुखे जगायो जागै छै, निद्रा २ उदय दुःखे
जागै छै तांम । वैठां, ऊभां जीवनें नींद ज आवै,
तिण नींद तणों छै प्रचला नाम ॥ पा ॥ १२ ॥
प्रचला २ नींद उदय सें जीवनें, हालतां चालतां
नींद ज आवै । पांचमी नींद छै कठिन थीणोदी,
तिणे नींदसें जीव जावक दब जावै ॥ पा ॥१३॥
पांच निद्रा नें च्यार दरिशनावरणी थी, जीव अंध

जाबक न सूझै लिगारो । देखवा आंसरी दरिशना वरणी कर्म, जीवरै जाबक कीधो अंधारो ॥पा॥ ॥ १४ ॥ दरिशनाबरणी क्षयोपस्म होवै जब, तीन क्षयोपस्म दरिशन पामें ते जीवो । दरिशनाबरणी सर्व क्षय हुयां थी, केवल दरिशन पामें ज्यूं घट दीवो ॥ पा ॥ १५ ॥ तीजो घणा घातियो मोह कर्म छै, तिणारा उदयसुं जीव हुवै मतवालो । सूधी श्रद्धारै लेखै मूढ मिथ्याती, मांठा कर्त्तव्यरो पिण न हुवै टालो ॥ पा ॥ १६ ॥ मोहनीय कर्मनां दोय भेद कह्या जिन, दरशन मोहनीय चारित्र मोहनीय कर्म । इण जीवरा निज गुण दोनूं बिगाड्या, येक समकित नें दूजो चारित्र धर्म ॥ पा ॥ १७ ॥ दरिशन मोहनीय उदय हुवै जब, शुद्ध समकतीरो जीव होवै मिथ्याती । चारित्र मोहनीय कर्म उदय जब, चारित्र खोय हुवै छकायांरो घाती ॥ पा ॥ १८ ॥ दरिशन मोहनीय कर्म उदय हुवां सुं, शुद्ध श्रद्धा समकित नहीं आवै । दरिशन मोहनीय उपस्म हुवै जब, उपस्म समकित निरमल पावै ॥ पा ॥ ॥ १९ ॥ दरिशन मोहनीय जाबक क्षय होयां, जब

क्षायक समकित सास्वती पावे । दरिशन मोहनीय क्षयोपसम हुवे जब, क्षयोपसम समकित जीवनें आवै पा ॥ २० ॥ चारित्र मोहनीयं कर्म उदय सुं, सर्व ब्रत चारित्र नहीं आवै, चारित्र मोहनीय उपसम हुयां सें । उपसम चारित्र निरमल पावे ॥पा॥ ॥२१॥ चारित्र मोहनीय जाबकक्षय होयां, क्षायक चारित्र आवै श्रीकार । चारित्र मोहनीय क्षयोपसम हुयांथी, क्षयोपसम चारित्र पामें जीव च्यार ॥पा॥२२ जीव तणा उदय भाव निप्पन्ना, तेतो कर्म तणां उदय सें पिछाणो । जीवरा क्षायक भाव निप्पन्ना, ते कर्म तणां क्षायक सें जाणो ॥ पा ॥ २३ ॥ जीव तणा क्षयोपसम भाव निप्पन्ना, ते कर्म तणो क्षयोपसम नाम । जीवरा उपसम भाव निप्पना, ते उपसम कर्म हुयां सें नाम ॥ पा ॥ २४ ॥ जीवरा जेहवा २ भांव निप्पना, ते जेहवा २ छै जीवरा नांम । नांम पाया कर्म तणैं संजोग विजोगें, तेहवा हिज कर्मांरा नांम छै ताम ॥ पा ॥ २५ ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्ञानावरणीय दरिशनावरणीय मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिक कर्म हैं येह एकान्ति पाप हैं इन्होंने जीवके निज गुणोंकी घात किया है इसलिये इन्हें घातिक कर्म कहते हैं, जैसे आंकाश

में बादलों से चंद्रमा ढक जाता है तब उद्योत बोहत कम होजाता है वैसे ही कर्मों मयी बादलों से जीवके ज्ञानादिक गुन ढक जाते हैं सो कहते हैं; ज्ञानवरणीय अर्थात् ज्ञानके आडी आवरणी जिस से जीवका ज्ञान गुन दबाहुआ है, ऐसेही दरिशना वरणीय, दरिशन गुनके आडी है, मोहनीय कर्म से जीव मतवाला होके मिथ्यात्व में प्रवर्त्तता है और शुद्ध श्रद्धारूप गुनका लोप होता है तथा जीवके प्रदेशों को चंचल करिके कर्म ग्रहण करताहै जिससे चारित्र गुन उत्पन्न नहीं होता, और अंतराय कर्म से जीवका बिर्य गुन दबाहुआहै जिससे अच्छी २ वस्तु नहीं मिलती है ये च्यारों कर्म पुद्गलहैं रूपी और च्यार स्पर्शीहैं इन्हें जीव खोटी करणी करिके लगायाहै जिन्होंके उदय से जीव भी खोटा २ नाम पाता है जैसा २ गुन जीव के इनसे रुके हैं वैसा ही इनके नामहैं ज्ञाना बरणीय कर्म की पांच प्रकृतिहैं अर्थात् पांच प्रकार से जीव का ज्ञान गुन दबाहै, मतिज्ञानावरणीय से मतिज्ञान श्रुतिज्ञानाबरणीय से श्रुतिज्ञान अवधिज्ञानावरणीय से अवधिज्ञान मनपर्यव ज्ञानाबरणीय से मन पर्यवज्ञान और केवल ज्ञानावरणीय से केवल ज्ञान अर्थात् सम्पूर्णज्ञान दबाहुआहै, ये ज्ञानावरणीय कर्म कुछ क्षय और कुछ उपस्म होय तब जैसी २ कर्म प्रकृतिका क्षयोपस्म होने से वैसाही ज्ञानोत्पन होताहै, यथा मति श्रुतिज्ञानावरणीय का जितनाही क्षयोपस्म हो उतनाहीं निरमल मति श्रुतिज्ञान उत्पन्न होताहै ऐसेहीं अवधि तथा मनपर्यवको जानना अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मकी च्यार प्रकृतिका क्षयोपस्म होनेसे जीव च्यार क्षयोपस्म ज्ञान पाता है, और केवल ज्ञानावरणीय का क्षयोपसम नहीं होता, क्षायकही होताहै जिसके क्षय होनेसे केवल ज्ञानोत्पन्न होताहै। ऐसेहीं दरिशनावरणीय कर्मकी नव प्रकृतिहैं सो नेत्रोंसे देखना तथा सुनना आदिको रोकतीहै चक्षुदरिशनावरणीय के उदय से अंधा होता है, अचक्षू दरिशनावरणीय के उदय से चक्षू विना च्यार इन्द्रियों का गुन सुनना आदि की हानि होती है, अवधि दरिशनावरणीय के उदय से अवधि दरिशन नहीं पाता है, और केवल दरिशनावरणीय से केवल दरिशन नहीं उत्पन्न होता है, तथा पांच प्रकार की निद्राभी दरिशनावरणीय कर्म के

उदय सें है सो कहते हैं, निद्रा अर्थात् जिस नींदवाले को जगाते साथ ही सुख सें जागता है, दूसरी निद्रा निद्रा जिसकी कुछ छेड छाड करने सें दुःख सें जागता है, तीसरी निद्रा का नाम प्रचला है, सो बैठे को या ऊभे हुए को आती है, चौथी प्रचला प्रचला वो चालते हालते हुए को आती है, और पांचमी नींद जिसका नाम थिणोद्धी है वो अतिकठिन निद्रा है उस निद्रा वाले को उस समय बहोत ताकत आजाती है वो निद्रावाला उस नींद में अनेक काम करि आता है तथा सैंकडों मन बोझ उठासक्ता है। ये नव प्रकृति दरिशनावरणीय कर्म की हैं, दरिशनावरणी नामा पाप कर्म नें जीवका देखने का गुन दबाया है, इसका क्षयोपस्म होने सें जीव पांचइन्द्रिय और चक्षू दरिशन१ अचक्षू दरिशन२ अवधि दरिशन३ ये आठ बोल पाता है और सर्वथा क्षय होनेसें केवल दरिशन पाता है। तीसरा घन घातिक पाप कर्म मोहनीय है जिसके उदय सें मतवाला याने अव्यक्त होके मिथ्या प्ररूपना करता है तथा उससें अशुद्ध कर्त्तव्य का टाला नहीं होता है अर्थात् जिन आज्ञा बाहरकी करणी में लिप्त रहता है, समकित मोहनीय सें सम्यक्त्व नहीं स्पर्शती, और चारित्र मोहनीय सें चारित्र गुन याने संयमी नहीं होता तथा छे जीवनी काय की हिन्सा में रक्त रहता है। दरिशन मोहनीय को उपसमाने सें अर्थात् दबाने सें, जीव उपस्म समकित पाता है, क्षय करने सें क्षायक समकित शंका कंखारहित ज्यो सास्वती है सो पाता है, और क्षयोपस्म होने सें क्षयोपसमानुसार क्षयोपस्म समकित पाता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय सें सर्व व्रत चारित्र नहीं होता है, उपसमानें सें उपस्म चारित्र निर्मल पाता है, सर्वथा क्षय होनेसें क्षायक चारित्र होता है, और क्षयोपस्म होने सें यथाख्यात चारित्र बिना बाकी च्यार चारित्रों की प्राप्ती होती है। तात्पर जीवके ज्यो उपसम भाव निष्पन्न हुए सो मोहनीय कर्म को उपसमाने सें है, क्षायक भाव निष्पन्न हुए सो कर्मों को क्षय करने सें, और क्षयोपस्म भाव निष्पन्न हुए सो च्यार घातिक कर्मों को क्षयोपस्माने सें होता है, जीवके जैसे जैसे भाव कर्मों के संयोग वियोग सें निष्पन्न होते हैं वैसा २ ही नाम जीवका है, और वोही नाम कर्मों का है।

॥ ढालतोहिज ॥

चारित्र मोहनीय तणी पचीस प्रकृतिछै, त्यां प्रकृ-
ति तणांछै जुवा २ नाम । त्यांरा उदयसें जीव
तणा नाम तेहवा, कर्मनें जीवरा जुदा २ परिणाम
॥ पा ॥ २६ ॥ जीव अत्यन्त उत्कष्टो क्रोध करे
जब, जीवरादुष्ट घणां परिणाम । तिणनें अनन्ता
नु बंधीयो क्रोध कह्यो जिन, ते कषाय आतमांछै
जीवरो नाम ॥ पा ॥ २७ ॥ जिणरा उदयसें उत्कष्टो
क्रोध करैछै, ते उत्कष्टो उदय आयासुं ताम । ते
उदय आयाछै जीवरा सच्या, त्यांरो अनन्तानु
बंधीयो क्रोधछैं नाम ॥ पा ॥ २८ ॥ तिणथी
कांइक थोडो अप्रत्याख्यान क्रोधछै, तिणथी कांइ
येक थोडो प्रत्याख्यान । तिणथी कांयेकथोडो सं-
जल क्रोध, या क्रोधरी चौकडी कही भगवान ॥ पा
॥ २९ ॥ इण रीतें मानरी चोकडी कहणी, माया
नें लोभरी चोकडी इमजाणो, च्यार चौकडी प्रसंगे
कर्मारा नाम, कर्म प्रसंग जीवरानाम पिछाणो
॥ पा ॥ ३० ॥ जीव क्रोध करे क्रोधरी प्रकृति सें,
मान करै मानरी प्रकृतिसें ताम । माया कपट करे
मायारी प्रकृतिसूं, लोभ करै लोभ प्रकृतिसें आम

॥पा॥३१॥ क्रोधकरे तिणसूं जीव क्रोधी कहायो, उदय आई ते क्रोधरी प्रकृति कहाणी । इणरीतें मान मायानें लोभ, याने पिण लीज्यो इणरीत पिछाणी ॥ पा ॥ ३२ ॥ जीवहंसे हांस्यरी प्रकृतिसें रति अरति प्रकृतिसूं रति अरति वधारे । भय प्रकृति उदयजीव भय पामै, सोग प्रकृति उदय जीव नें सोग आवै ॥ पा ॥ ३३ ॥ दुगंछा आवे दुगंछारी प्रकृतिसूं, स्त्रीवेद उदयसें बधे विकार, तिणने पुरुषनी अभिलाषा होवे, पछै होतां २ हुवे बहोत बिगार ॥पा॥३४॥ पुरुष वेदोदय स्त्रीनीं अभिलाषा, नपुंसक वेदोदय दोनूंरी चहाय । कर्म उदयसें वेदी नाम कह्यो जिन, कर्मानें पण वेद कह्या जिनराय ॥ पा ॥ ३५ ॥ मिथ्यात उदय जीव होवै मिथ्याती, चारित मोह उदय जीव होवै कुकर्मी इत्यादि मांठा २ जीवरा नाम, अनारजनें बलि हिन्सा धर्मी ॥पा॥ ३६ ॥ चौथो घनघाती अंतराय कर्म छै, तिणरी प्रकृति पांच कही जिन ताम ये पांच प्रकृति पुद्गल चो स्पर्शी, त्यां प्रकृतिराछै जुवा २ नाम ॥पा॥३७॥ दाना अंतरायछै दानरे आडी, लाभा अंतरायसुं वस्तु लाभ सकै नाहीं ।

ज्ञान दरिशन चारित्र तप लाभ न सकै, वले लाभ न सकै शब्दादिक कांई ॥ पा ॥ ३८ ॥ भोगअंतराय कर्म उदयसें, भोगमिल्या भोग भोगवणी न आवै । उपभोग अंतराय कर्म उदयसूं, उपभोग मिल्या ते भोग्या नहीं जावै ॥ पा ॥ ३९ ॥ वीर्य अंतराय कर्म उदयथी, तीनूं हीं वीर्य गुण हीणा थावे उठाणादिक हीणां थावे पांचूंही, जीवरी सक्ति जावक घट जावै ॥ पा ॥ ४० ॥ अनन्त बल प्राक्रम जीवतणों छै, तिणनें येक अंतराय कर्म घटायो । कर्म नें जीव लगायो जब लाग्यो, आपरो कियो आपतणों उदय आयो ॥ पा ॥ ४१ ॥ पांचूं अंतराय जीवतणां गुणदाब्या, जेहवागुणदाब्या तेहवा कर्मांरानाम । ये तो जीवरै प्रसंगै नाम कर्मांरा, पिण स्वभाव दोनांरा जुदा २ ताम ॥ पा ॥ ४२ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोहनीय कर्म के दो भेद हैं जिसमें दरिशन मोहनीय की ३ प्रकृति और चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृति है सो जैसी २ प्रकृति उदय आती है उसवक्त वैसाही नाम जीव का और वैसाही नाम उन प्रकृतियों का है जैसे अनन्तानुबंधीया क्रोध की प्रकृति उदय आई तब जीव अत्यंत क्रोधातुर होके दुष्टकार्य करता है यह क्रोध जावजीव पर्यंत रहता है इसके उदय में सम्यक्त्व चारित्र का सर्वतः अभाव है, उदय आई सो प्रकृति अजीव है और उस

में भावत्यी चोकषाय आत्मा जीव हैं इसही तरह अनन्तानुबंधिया मान माया और लोभ जानना, जिससे कुछ कम अप्रत्याख्यानी चोकडी जिसके उदय में प्रत्याख्यान अर्थात् पचख्खान याने चारित्र का अभाव है, जिससें कुछ कम प्रत्याख्यान की चोकडी जिसके उदय में सर्व व्रत चारित्र का अभाव है, और जिससें कम संज्वल का क्रोध मान माया लोभकी चोकडी है जिसके उदय में क्षायक चारित्र यथाख्यात संयम का अभाव है यह सोलह (१६) कषाय हैं इनके उदयसें जीव का नाम कषायी अर्थात् कषाय आत्मा है, तात्पर क्रोध प्रकृति सें जीव क्रोधी मान की प्रकृति सें मानी, माया की प्रकृति से मायी और लोभ की प्रकृति से लोभी कहलाता है, अब बाकी नव प्रकृति रही सो कहते हैं हास्य प्रकृति के उदय सें जीव को हास्य आता है, रति प्रकृति सें प्रिय पुद्गलादि सें रति होती है, अरति की प्रकृति सें अप्रिय पुद्गलादि सें अरति होती है, भय प्रकृति सें भय होता है, सोग प्रकृति सें सोग, और दुगंछा प्रकृति सें विदगंछा आती है स्त्रीवेद उदय सें जीव स्त्रीवेदी हो के पुरुषकी अभिलाषा पुरुष वेदके उदय सें पुरुष वेदी होके स्त्रीकी अभिलाषा करता है, और नपुंसक वेदके उदय सें नपुंसक वेदी होके दोनूं की अभिलाषा करता है। मित्थ्यात्वके उदयसें जीव मित्थ्यात्वी होता है और चारित्र मोहनीय के उदय सें जीव कुकरमी हिन्सा धर्मी होता है। चोथा घनघातिक अंतराय कर्म है सो जिसकी पांच प्रकृति है सो तो च्यार स्पर्शी पुद्गलों का पुञ्ज है जिन्हों के उदय सें जीवके जैसे २ गुन दवे हैं वैसें ही प्रकृतियों का नाम है–दाना अंतराय सें दानी पणे का गुंन दवा है, लाभान्तराय सें वस्तु का लाभ नहीं होता है तथा ज्ञान दरिशन चारित्र तपका लाभ नहीं होता है अथवा शब्द वर्ण गंध रस स्पर्श का भी लाभ नहीं होता है, भोग अन्तराय कर्मोदय से मिले हुवे भोग भी भोगे नहीं जाते हैं, उपभोग अन्तराय कर्म के उदय सें मिले हुये उपभोग भी नहीं भोग सक्ता है, वीर्य अंतराय कर्म उदय सें तीनूं वीर्य उठाण कम्मबल वीर्य पुर्षाकार प्राक्रम की हानी होती है, तथा अत्यंत निर्बल होजाता है, अनन्त बल प्राक्रम जीव के हैं उन्हें सिर्फ अंतराय कर्म ही घटाया है जेसा जीवात्मा कर्म

बांधेगा वैसा ही उदय आवेगा, जीवके दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इन पांचूं गुनों को अंतराय कर्म दवाया है वैसा ही नाम इस अंतराय कर्म का है परंतु स्वभाव दोनूं का अलग २ है जीवके गुन जीव है और अंतराय कर्म अजीव है जिसका गुन जीव के अन्तराय देनेका है। तात्पर ज्ञानावरणी दरिशना वरणी मोहनीय अंतराय यह च्यार कर्म एकान्ति पाप कर्म है अजीव है, जिन्हों के उदय सें जीव के ज्ञान, दरिशन, सम्यक्त्व चारित्र, वीर्य, यह च्यारों गुनों की घात हो रही है याने दवे हुए हैं इससें इनका नाम घातिक कर्म है। बाकी च्यार कर्म अघातिक अर्थात् उपरोक्त अनन्त चतुष्ट्य की घात इन च्यारों सें नहीं होती ये च्यारों कर्म पुन्य पाप दोनों हैं जिस में पुन्य का वर्णन तो पुन्य पदार्थ में कह ही दिया है अब पाप का वर्णन कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

च्यार घन घातिया कर्म कह्या जिन, हिवैं अघातिया कर्म छै वलि च्यार। त्यानें पुन्य पाप दोनूं कह्या जिन, हिव पाप तणुं कहुं छूं विस्तार ॥ पा ॥ ४३ ॥ जीव असाता पावै पाप कर्म उदय सें, तिण पापरो असाता बेदनी नाम। जीवरा संच्या जीवनें दुःख देवै, असाता बेदनी पुद्गल परिणाम ॥ पा ॥ ४४ ॥ नारकीरो आउषो पापरी प्रकृति, केई तिर्यंचरो आउषो पिण पाप। असन्नी मनुष नें केई सन्नी मनुषरो, पापरी प्रकृति दीसै छै विलाप ॥ पा ॥ ४५ ॥ ज्यांरो आउषो पाप कह्यो

छै जिनेश्वर, त्यांरी गतिनें अनुपूर्वी दीसै छै पाप। त्यांरी गति नैं अनुपूर्वी दीसै अउषा लारै, इणारो निश्चय जाणै जिनेश्वर आप ॥ पा ॥४६॥ च्यार संघयण में जे हाड पाडवा, ते अशुभ नाम कर्मोदय सें जाणो। च्यार संठाण में आकार भूंडा ते, अशुभ नाम कर्मोदय मिलया आणों ॥ पा ॥ ४७ ॥ शरीर उपांग बंधण संघातण, त्यांमें केई कांरा मांठा अत्यन्त अजोग। ते पण अशुभ नाम कर्म उदय सें, अण गमता पुद्गलांरो मिलयो संजोग ॥ पा ॥४८॥ वरण गंध रस स्पर्श मांठा मि-लिया, ते अण गमता नें अत्यन्त अयोग। ते पिण अशुभ नाम कर्म उदय सें, एहवा अशुभ पुद्गलांरो मिलियो जोग ॥ पा ॥ ४६ ॥ थावर नाम कर्म उदय थावररो दसको, तिण दसकारा दसबोल पि-छाणों। ते नाम उदय छै जीवरा नाम, तेहवा हिज नाम कर्मांरा जाणो ॥ पा ॥ ५० ॥ था-वर नाम उदय जीव थावर कहाणूं, तिण सें आ-घो पाछो सरकणी नहीं आवे। सूक्ष्म नाम उदय जीव सूक्ष्म हुओ छै, सूक्ष्म शरीर सघलां नान्हो पावै ॥ पा ॥ ५१ ॥ साधारण नामसूं जीव हुओ

साधारण, येकण शरीर में रहै अनन्ता तांम, अपर्यांप्ता नाम सें अपर्यांप्ता मरे छै, तिणसूं अपर्यांप्तो छै जीवरो नाम ॥ पा ॥ ५२ ॥ अथिर नाम सें जीव अथिर कहाणो, शरीर अथिर जावक ढीलो पावै। दुभ नाम उदय जीव दुभ कहाणो' तिणसूं नाभि नींचे शरीर पाडवो थावै ॥ पा ॥ ५३ ॥ दुःभाग्य नाम थकी जीव हुवो दुःभागी, अण गम तो लागै नगमें लोकांनैं लिगार। दुःस्वर नाम थकी जीव हुअै दुःस्वरियों, तिणरो कंठ अशुभ नहीं अंीकार ॥ पा ॥ ५४ ॥ अणादेज नाम कर्म उदयथी, तिणरो बचन कोई न करैं अंगीकार। अजस नाम कर्म थी होवै अजसियो, तिणरो अजस बोलै लोक बारम्बार ॥ पा ॥ ५५ ॥ अपघात नाम कर्म उदयथी, पैलो जीतै आप पामें घात। दुःभगई नाम कर्म संयोगें, तिणरी चाल दीठी किणहीनें नाहिं सुहात ॥५६॥ नींच गौत उदय नींच हुअै लोक में, ऊंच गौत्र तणां तिणरी गिणै छै छोत। नींच गौत्र थकी जीव हर्ष न पामें, पोतारो संच्यो उदय आयो नींच गौत ॥ पा ॥ ५७ ॥ ए पाप तणी प्रकृति ओलखावण,

जोड कीधी श्रीजी द्वारा सहर मंझार। सम्वत् अठारह पचावन वर्षं, जेठ सुदी त्रतिया गुरुवार ॥पा॥५८॥

॥ इति पाप पदार्थ ॥

॥ भावार्थ ॥

च्यार कर्म निकेवल पाप और घनघातिक है उनका वर्णन् तो ऊपर कियाही है अब च्यार कर्म पुन्य पाप दोनों हैं सो जिस में से पाप का वर्णन करते हैं, जीव पाप के उदय से असाता वेदता है जिस पाप का नाम असाता वेदनी कर्म है वोह पुद्गल हैं असाता वेदनी कर्म पणे परिणमें हैं इसही लिये उन पुद्गलों का नाम असाता वेदनी पाप कर्म है, तथा ज्यों आयुष्यपणें परिणमें उन पुद्गलों का नाम आयुष्य कर्म है आयुष्य च्यार प्रकार का है नारकी का आयुष्य पाप प्रकृति है तथा पृथिव्यादि पंचस्थावर और बेन्द्री तेन्द्री चौरिन्द्री का आयुषा पाप प्रकृती है कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्री का भी आयुष्य पाप की ही प्रकृति है और असन्नी मनुष्य तथा कितनेक सन्नी मनुष्य का आयु कर्म भी पाप प्रकृति जान पडता है जिसका आयुष पाप प्रकृति है उनकी गति वा अनुपूर्वी भी पाप की ही प्रकृति है क्योंके ज्यो आयुष्य पाप प्रकृति है वो गति अनुपूर्वी भी उसके साथही है फिर निश्चय तो श्री जिनेश्वर देव कहै वो सत्य है, तथा च्यार संघयण में ज्यो ज्यो खराब हाड्डियें वा च्यार संस्थान में ज्यो ज्यो खराब आकार है वो अशुभ नाम कर्मके उदयसे हैं, और ज्यो शरीर तथा अंगोपांग बंधण संघातन में कितनेकोंके खराब खराब अमनोग्य पुद्गल है सो भी अशुभ नाम कर्म के उदयसे हैं, और ज्यो २ कुवर्ण कुगन्ध रस कुस्पर्श आदि अमनोग्य मिले हैं सोभी अशुभ नाम कर्म का ही उदय है, तथा स्थावर का दसक अर्थात् स्थावर के दस बोल हैं वो भी अशुभ नाम कर्म का उदय है सो कहते हैं—

१—स्थावर नाम कर्म के उदय सें जीव स्थावर होता है जिस सें स्पर्श इन्द्री विना बाकी च्यार इन्द्रियां न पाके चलने फिरनें को असमर्थ होता है।

२—सुक्षम नाम कर्म के उदय सें जीव सुक्षम शरीरी होके अत्यंत छोटा शरीर पाता है।

३—साधारण नाम कर्म के उदय सें जीव ऐसा शरीर पाता है कि अत्यन्त छोटा येक शरीर में अनन्ते जीव रहते हैं।

४—अपर्याप्ता नाम कर्म के उदय सें जीव पूर्ण पर्याय न पाकर अपर्याप्त अवस्था में ही मरण पाता है।

५—अथिर नाम कर्म के उदय सें जीव अथिर कहलाता है जिस सें निरबल ढीला शरीर पाता है।

६—दुभ नाम कर्म उदय सें जीव दुभागी होता है जिससें दूसरे को अप्रिय लगता है।

७—दुस्वर नाम कर्मोदय सें जीवके स्वर यानें कण्ठ खराब बेस्वरे होते हैं।

८—अणादिज नाम कर्मोदय सें आदेज वचनी न होके कूरबोली होता है जिसका वचन कोई अंगीकार नहीं करते हैं।

९—अजस नाम कर्म के उदय सें जीव अजसिया होता है जिस की सोभा कोई नहीं करता है कोई अच्छा काम भी करे तो भी अपजस ही होता है।

१०—अपघात नाम कर्मोदय सें दूसरे के मुकाबले में हार होती है।

तथा दुभगई नाम कर्म के उदय सें चलना फिरना ऐसा खराव कि किसी को अच्छा नहीं लगता है, और नींच गोत्र कर्म पाप के उदय सें जीव नींच गोत्र में उत्पन्न होता है ऊंच गोत्र वाले उसकी छोत समझते हैं, तात्पर यह है कि पाप है सो अशुभ कर्म है कर्म है वो पुद्गल है उन्हें जीव जिन आज्ञा बाहर की करणी करके लगाता है तब जीवके अशुभ पणैं उदय आने सें जीव दुःखी होता है, नव पदार्थों में चोथा पदार्थ पाप है जिसको ओलखना के लिए स्वामी श्री भीषन-जी ने नांथ द्वारा नगर में ढाल

ओडी है सम्वत् अठारह सय पचावन की साल में जेष्ठ सुद तीज गुरुवार को जिस का भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि प्रमाण कहा है इस में कोई भूल रहा हो उसका मुझे सर्वथा मिच्छामि दुक्कडं है।

आपका हितेच्छु

आ० गुलाबचंद लूणीयां ।

॥ दोहा ॥

आश्रव पदार्थ पांचमों । तिणनें कहिजे आश्रव द्वार ॥ ते छै कर्म आवानां बारणां । ते बारणां नें कर्म न्यार ॥ १ ॥ आश्रव द्वार तो जीव छै । जीवरा भला भूंडा परणाम ॥ भला परणाम पुन्यारा बारणां । भूंडा पाप तणां छै तांम ॥ २ ॥ केई मूढ मिथ्याती जीवडा । आश्रव नैं कहै अजीव ॥ त्यां जीव अजीव न ओलख्यो । त्यां रै मोटी मिथ्यात्वरी नींव ॥ ३ ॥ आश्रव तो निश्चे जीव छै । श्रीवीर गया छै भाख ॥ ठांम ठाम सिद्धांत में भाषीयो । ते सुणज्यो सूत्रनीं साख ॥ ॥ ४ ॥ पाप आवानां बारणां । पहिली कहूं छूं नांम ॥ यथा तथ्य प्रगट करूं । ते सुणो राखि चित ठांम ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब पांचमां पदार्थ आश्रव द्वार कहते हैं-जीसके आश्रव द्वार करके कर्म आते हैं कर्म और आश्रव अलग २ हैं अर्थात् आश्रव द्वार तो जीव है और द्वारों में होके आने वाले कर्म अजीव है, जीवके भले और बुरे परिणाम है सोही आश्रव द्वार है भले परिणामों से पुन्य और बुरे परिणामों से पाप लगता है, पुण्य पाप का करने वाला जीव है जिसहीका नाम आश्रव है,परन्तु केई मिथ्याती आश्रवको अजीव कहते हैं सो जीव अजीव के अजाण है वे मिथ्यात्व मयी दीवारकी बुनियाद को दृढ करते हैं किन्तु आश्रव द्वार कदापि अजीव नहीं है निश्चै ही जीव है श्रीवीर प्रभूनें अंगोपांग में जगहें जगहें कहा है सो प्रथम तो आश्रव द्वार को यथा तथ्य ओलखाते हैं, यथा-

॥ ढाल ॥

॥ विनयरा भाव सुण २ गुंजे एदेशी ॥

ठांणा अंग सूत्र मझार । कह्या छै पांच आश्रवद्वार ॥ ते द्वार छै महा विकराल । त्यां में पाप आवै दग चाल ॥ १ ॥ मिथ्यात अव्रत नें कषाय । प्रमाद जोग छै ताय ॥ ये पांचूं ही आश्रवद्वार छै ताम । ये निश्चय ही जीव तणां नाम ॥ २ ॥ ऊंधो श्रद्धै ते आश्रव मिथ्यात । ऊंधो श्रद्धै ते जीव साक्षात ॥ तिण आश्रव नों रूंधण हार । ते समकित संवर द्वार ॥ ३ ॥ अत्याग भाव अव्रत छै ताम । जीवतणां मांठा परिणाम ॥

तिण इब्रत नें देवै निवार । ते ब्रत छै संवर द्वार ॥ ॥ ४ ॥ नहीं त्याग्या छै ज्यां द्रव्यांरी । आसा बंछा लागी रहे त्यांरी ॥ अव्रत जीव तणां परिणाम । तिणनें त्याग्यां संवर हुवै आम ॥ ५ ॥ प्रमाद आश्रवछै तांम ॥ ये पिण जीवरा मैला परिणाम । प्रमाद आश्रव रूंधाय । जब अप्रामद संवर थाय ॥ ६ ॥ कषाय आश्रवछै तांम । जीवरा कषाय परिणाम । त्यांसुं पाप लागै छै आय । ते अकषाय सुं मिटजाय ॥७॥ सावद्य निरवद्य जोग व्यापार । ये पांचूं ही आश्रव द्वार । रूंधै भला भूंडा परिणाम । अजोग संवर तिणरो नांम ॥ ८ ॥ पांचूं आश्रव उघारा द्वार । कर्म आवै यां द्वार मभार । द्वारतें जीव परिणाम । त्यांसूं कर्म लागछै तांम ॥ ९ ॥ त्यांरा ढांकण संवर द्वार । आश्रव द्वाररा रूंधण हार । नवा कर्मारा रोकण हार । ये पिण जीवरा गुण श्रीकार ॥१०॥ इमहिज कह्यो चौथा अंग मभार । पांच आश्रवनें संवर द्वार । आश्रव कर्मारो करता उपाय । कर्म आश्रवसुं लागैछै आय ॥ ११ ॥ उत्राध्ययन गुणतीसमां मांहयो । पडिक्कमणांरो फल बतायो । व्रतांरो छेद्र ढंकायो । वलि आश्रवद्वार रूं-

धायो ॥ १२ ॥ उत्राध्ययन गुणातीसमां मांह्यो । पञ्चखाणरो फल बतायो । पचखाणसुं आश्रवरूं धायो । आवता कर्म मिटजायो ॥ १३ ॥ उत्राध्ययन गुणातीसमां मांह्यो । जलनां आगम रूंधायो । जब पाणी आवतो मिटजावै । आश्रव रूंध्यांसुं कर्म न आवै ॥ १४ ॥ उत्राध्ययन गुणातीसमां मांह्यो । मांठाद्वार ढांक्यां कह्या ह्यायो । कर्म आवानांठाम मिटाय । जब पाप न लागै आय ॥ १५ ॥ ढांकिया आश्रवद्वार । जब पाप न बंधै लिगार । कह्यो छै दशवै कालिक मम्फार । तीजा अध्ययनमें आश्रव द्वार ॥ १६ ॥ रूंधै पांचुंही आश्रवद्वार । ते भिक्षु मोटा अणगार । ते पिण दशवै कालिक मम्फार । तिहां जोय करो निस्तार ॥ १७ ॥ पहिलां मन जोग रूंधै ते शुद्ध । पछै बचन काया जोग रूंधै । उत्राध्ययन गुणातीसमां मांह्यो । आश्रव रूंधणां चाल्याछै ह्यायो ॥१८॥ पांच अधर्मद्वार छै ताहयां तेतो प्रश्न व्याकरण मांह्यो । वले पांच कह्या संवर द्वार यां दोयांरो घणों विस्तार ॥ १९ ॥ ठाणा अंग पांचमां ठाणां मांहि । आश्रवद्वार पडिक्कमणां ताहि । पडिक्कमियांपछै रूंधावैद्वार । फेर पाप न

लागे लिगार ॥२०॥ फूटी नावारो दृष्टांत । आश्रव नैं ओलखायो भगवंत । भगोती तीजा शतक मंझार। तीजे उद्देशैछै विस्तार ॥ २१ ॥ वलि फूटी नावारो दृष्टांत । आश्रवनैं ओलखायो भगवंत । भगवती पहिला शतक मंझार । छट्टे उद्देसैछै विस्तार ॥२२॥ कह्या छै पांच आश्रवद्वार । वलि अनेक सूत्रां मंझार । तेतो पूराकेम कहाय । सघलांरोछै येक न्याय ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

श्रीठाणां अंगसूत्रके पांचवे ठाणे में पांच आश्रवद्वार कहे हैं मिथ्यात १ अव्रत २ प्रमाद ३ कषाय ४ जोग ५ येह पांच प्रकार के आश्रवद्वार हैं अर्थात् जीवके इन पांचों द्वारा कर्म लगते हैं मिथ्याश्रद्धा सैं अव्रतसैं प्रमाद सैं कषाय सैं और मनवचनकायाके जोग वर्तानें सैं, जीव मिथ्यात्व में प्रवर्त्यां सो मिथ्यात्व आश्रव जीवके परिणामहै १ अव्रत अर्थात् जिस जिस द्रव्यों के त्याग नहीं किये उन द्रव्यों की आसावन्छा निरंतर है सो अव्रत आश्रव जीवके परिणामहै २ प्रमाद अर्थात निरवद्य कार्य सैं अण उत्साह सो जीवके मैले परिणामहै ३ कषाय अर्थात् क्रोध मान माया लोभ मैं प्रवर्त रहाहै सो कषाय आश्रव जीवके परिणाम है ४ जोग अर्थात् मन वचनकायाके जोगों का व्यापार सो जोग आश्रव जीवके परिणामहै ५ उपरोक्त पांचूं आश्रव जीवके उपाड़े द्वारहै इन द्वारों होके कर्म आते हैं द्वार हैं सो जीव के परिणामहै जीव के परिणाम हैं सो जीव है, श्रीठाणां अंग सूत्र की टीका में श्रीअभयदेव सूरिने कहा है अत्र टीका-"आश्रवणं जीवतडागे

कर्म जलस्य संगलन माश्रव: कर्म बंधन मित्यर्थः तसद्वाराणीव द्वाराण्युपाया आश्रव द्वाराणीति" अर्थात् कर्मोंका बंध करै कर्मोंका उपाय सोही आश्रव द्वारहै, आश्रव द्वारोंका ढांकणा संबर द्वार है जिससे न्यूतन कर्म नहीं बंधते हैं, ऐसे ही चतुर्थांग श्री समवायंगमें पंच आश्रव द्वार और पंच संवर द्वार कहे हैं आश्रव द्वारा कर्म लगते हैं संवर द्वारा कर्म रुकते हैं; तथा उत्राध्ययन गुण तीसमां अध्ययन में कहा है प्रतिक्रमण करणेसें व्रतोंका छेद्र ढकते हैं तथा आश्रव द्वार रूंधता है, पच्चख्खाणसें भी आश्रव रूंधता है और आवर्त कर्म मिटते हैं, तथा इसही अध्ययन मे कहा है जैसें जलकें आगमन रोकनेसें जल नहीं आता है वैसे ही आश्रव द्वार रूंधनेसें पाप नहीं आता है, तथा दशवै कालिक सूत्रके तीसरे अध्ययन में कहा है आश्रव द्वारों को ढकणे सें पाप नहीं बंधता है भिक्षु वोही है सो आश्रव द्वारोंको रूंधै, उत्राध्ययन के गुण तीसमां अध्ययन में खुलासा कहा है आश्रव द्वार को रूंधनें सें कर्मों की मुक्ति होती है, तथा प्रश्न व्याकरण सूत्र में हिम्सादि पंच आश्रव द्वारों को अधर्म द्वार कहे हैं, श्रीठाणां अंगके पांचवें ठाणे में कहा है आश्रव द्वार का प्रतिक्रमण करके रूंधना अर्थात् बंध करना चाहिये जिससे फिर पाप नहीं लगता है, यहां क्यों श्री भगवती सूत्र के तीसरा शतक के तीसरे उद्देसे में फूटी नावा का दृष्टान्त देके आश्रव को ओलखाया है अर्थात् जैसें नावा के छेद्र होने सें नावा में पानी भरता है वैसे ही जीव मयी नावा में आश्रव मयी छेद्र सें कर्म मयी पांनी आता है, तात्पर कर्मों का हेतु उपाय और करता आश्रव है हेतु उपाय करता है सो जीव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

आश्रव द्वार ठाम ठाम। ते तो जीव तणा परिणाम। त्यानें अजीव कहै छै मिथ्याती। खोटी श्रद्धा तणा पख पाती॥ २४॥ कर्मा नें ग्रहै ते

जीव द्रव्य । ग्रहे तेहिज छै आश्रव । ते तो जीव तणां परिणाम । तिण सूं कर्म लागै छै तांम ॥२५॥ जीव नें पुद्गलरो मेल । तीजा द्रव्य तणूं नहीं भेल । जीव लगावे जांण जांण । जब पुद्गल लागै छै आंण ॥ २६ ॥ तेहिज पुद्गल छै पुन्य पाप । त्यांरो करता छै जीव आप । करता तेहिज आश्रव जाणों । तिण में शंका मूल म आणों ॥ २७ ॥ जीव छै कर्मांरो करता । सूत्र में पाठ अपरता । कह्यो छै पहिला अङ्ग मभार । जीव कर्मांरो करतार ॥ २८ ॥ पहिलो उद्देसो संभालो । इणनें करता कह्यो तिहुं कालो । जीव स्वरूप तणुं अधिकार । तीन करणें कह्यो करतार ॥१६॥ करता तेहिज आश्रव तांम । जीवरा भला भुंडा परिणाम । परिणाम ते आश्रव द्वार । ते जीव तणुं छै व्यापार ॥ ३० ॥ करता करणी नें हेतु उपाय । यह कर्मांरा करता कहाय । यांसूं कर्म लागै छै आय । त्यांनें आश्रव कह्यो जिन राय ॥ ३१ ॥ सावज्म करणी करतां कर्म लागै । तिण सुं दुःख भोगवसी आगै । सावद्य करणी नें कहै अजीव । ते तो निश्चय मिथ्याती जीव ॥ ३२ ॥

जोग सावद्य निरवद्य चाल्या । त्यांनें जीव द्रव्य में घाल्या । जोग आतमा कहि छै तांम । जोगां नें कह्या जीव परिणाम ॥३३॥ जोग छै ते जीव व्यापार । जोग तेहिज आश्रव द्वार । आश्रव तेहिज जीव निःशङ्क । तिण म मूल म जाणुं शङ्क ॥ ३४ लेश्या भली नें भूंडी चाली । त्यांनें पिण जीव द्रव्य में घाली। लेश्या उदय भाव छै तांम । लेश्या ते जीव परिणाम ॥ ३५ ॥ लेश्या कर्मा सूं आतम लेशै । ते तो जीव तणां प्रदेशै । ते पिण आश्रव जीव निःशंक । त्यांरा थानक कह्या असङ्ख ॥ ३६ ॥ मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय । उदय भाव छै जीव त्हाय । कषाय आतमां कहि छै तांम । यानें कह्या छै जीव परिणाम ॥ ३७ ॥ ये पांचूं ही छै आश्रव द्वार। ते कर्म तणां करतार । ये पांचूं ही जीव साक्षात। तिण मैं शंका नहीं तिल मात ॥ ३८ ॥ आश्रव जीव तणां परिणाम । नव में ठाणे कह्यो छै ताम । जीवरा परिणाम छै जीव । त्यांनें विकल कहै छै अजीव॥३९॥ नवमां ठाणां अङ्ग ठाणा मांहि । आश्रव कर्म ग्रहै छै ताहि । कर्म ग्रहै ते आश्रव जीव । ग्रह्या आवै

ते पुद्गल अजीव ॥ ४० ॥ वाली ठाणा अंग दश में ठाणों । दश बोल ऊंधा कुंण जाणों । ऊंधा श्रद्धै तेहिज मिथ्यात । ते आश्रव जीव साक्षात ॥४१॥ पांच आश्रव नें अव्रत तांम । मांठी लेश्या तणां परिणाम । मांठी लेश्या तो जीव छै त्हाय । तिणरा लक्षण अजीव किमथाय ॥ ४२ ॥ जीव नें लक्षणां सूं पिछाणो । जीवरा लक्षण जीव जाणो । जीवरा लक्षणां नें अजीव स्थापै । ते तो वीर नां बचन उथापै ॥ ४३ ॥ च्यार संज्ञा कहि जिनराय । ते पिण पाप तणूं छै उपाय । पाप उपाय ते आश्रव । ते आश्रवछै जीव द्रव्य ॥ ४४ ॥ भलानैं भूंडा अध्यवसाय । त्यांनैं आश्रव कह्या जिनराय । भलासूं तो लागैछै पुन्य । भूंडासुं लागै पाप जबून ॥ ४५ ॥ आर्त्तनें रुद्रध्यान । त्यांनैं आश्रव कह्या भगवान । आश्रव कर्म तणांछै द्वार । द्वार तेहिज जीव व्यापार ॥ ४६ ॥ पुन्यनें पाप आवानां द्वार । ते कर्मतणां करतार । कर्मांरो करता आश्रवजीव । तिणनें कहै अज्ञानी अजीव ॥४७॥ जे आश्रवनैं अजीव जाणौं । ते पीपल बंधी मूर्ख जीमताणौं । कर्म लगावै ते आश्रव । ते निश्चैछै

जीव द्रव्य ॥ ४८ ॥ आश्रवनें कह्यो छै रूंधाणीं ।
आजिनजीरा मुखरी वाणीं । ओ किसो द्रव्य
रूंधाणुं । किसो द्रव्यथिर थपाणुं ॥४९॥ विपरीत
तत्व कुंण जांणैं । कुंण मांडै उलटी ताणैं । कुंण
हिन्सादिकरो अत्यागी । कुंणरी वंछारहै लागी
॥५०॥ शब्दादिक कुंण अविलाषै । कषाय भाव
कुंण राखै । कुंण मन जोगरो व्यापारो । कुंण
चिन्तै म्हारो नैं थांरो ॥ ५१ ॥ इन्द्रियां नें कुंण
मोकली मेलै। शब्दादिक नैं कुंण भेलै । इणानैं
मोकली मेलै ते आश्रव । आश्रव तेहिजछै जीव
द्रव्य ॥ ५२ ॥ मुखसुं कुण भूंडो बोलै । कायासुं
कुण मांठो डोलै । ये तो जीव द्रव्यनुं व्यापार ।
पुद्गलपिणवर्तैछै लारै ॥ ५३ ॥ जीवरा चलाचल
प्रदेश । त्यांनें स्थिर स्थापै दृढ करेश । जब आ-
श्रव द्रव्य रूंधाणुं । तब तेहिज संवर थपाणुं ॥
॥५४॥ चलाचल जीवरा प्रदेश । सघलां प्रदेशां
कर्म प्रवेश ॥ सारा प्रदेश कर्म ग्रहंता । सघला
प्रदेश कर्म करंता ॥ ५५ ॥ त्यां प्रदेशांरो थिर क-
रणहार । तेहिज छै संवर द्वार ॥ अथिर प्रदेश छै
आश्रव । ते निश्चै ई छै जीव द्रव्य ॥५६॥

॥ भावार्थ ॥

जैन सिद्धान्तोंमें जगह जगह आश्रवद्वार का वर्णनविस्तार पूर्वक कहा है सो सम्पूर्ण कहांतक कहैं सारांस सबका येक यही है कि आश्रवद्वार हैं सो जीवके परिणाम है जीवके परिणामोंको अजीव कहैं उन्हें मित्थ्यात्वी जानना, भगवाननें तो सूत्रों में फरमाया है कि कर्मों को ग्रहण करै सो आश्रव है इसलिये बुद्धिवान जनोंको विचारणा चाहिये कि कर्मों का ग्रहण कोन करता है और ग्रहण क्या होते हैं, जीव ग्रहण करता है तब पुन्य पाप मयी पुद्गल ग्रहण होता है, करता है सोही आश्रव है प्रथमाङ्ग में कहा है जीव कर्मोंका करता तीनूं काल में है, करता करणी हेतु उपाय यह कर्मोंके करता है इनसें कर्म लगते हैं इसही लिये इन्होंको जिनेश्वर देवोंनें आश्रव कहा है, तथा सावद्य करणी सें पाप लगता है सावद्य करणी है सोंही जीव है और उसहीका नाम आश्रव है, लेश्या कर्मोंसें आत्म प्रदेशोंको लेशती है अर्थात् लिप्त करती है तथा मन वचन काया के जोगोंसें कर्म लगते हैं सो जोग आश्रव कहा है उसही को जोग आतमा कही है करन करावन अनुमोदन इन तीनूंही करणों सें जीव कर्म करता है और करता है सोही आश्रव है, जोग सावद्य निरवद्य दोनूं प्रकारके है सो जीव है सावद्य जोगोंसें पाप और निरवद्य जोगोंसें पुन्य ग्रहण होता है. आश्रव मुख्य पांच प्रकारके कहे हैं—मित्थ्यात अर्थात् विरुद्ध श्रद्धा आश्रव १ अव्रत आश्रव २ अत्यागभाव, प्रमाद आश्रव ३ कषाय अर्थात् क्रोध मान माया लोभ आश्रव ४ जोग अर्थात् मन वचन कायाको प्रवर्तना सो आश्रव ५ तथा हिन्सा झूंठ चोरी मैथुन परिग्रह ये पांच आश्रव और अव्रत इनको मांठी लेश्या के परिणाम कहे हैं मांठी लेश्या जीव है तो उसके परिणाम अजीव कसें हो सक्ता है मांठी लेश्या के परिणामों को तथा लक्षणों को अजीव कहैं उन्हें मिथ्यात्वी जानना, च्यार संज्ञा पापका उपाय है सो जीव है भले और खराब जीव के परिणामों सें ही पुन्य और पाप ग्रहण होता है ग्रहण करै उसहीका नाम आश्रव है, ऐसेही

आर्त रौद्र ध्यानसें पाप लगता है, आर्त रौद्र ध्यान है सो जीव है और उसहीका नाम आश्रव है इत्यादि अनेक प्रकारोंसे जीव कर्मों का करता है सोही आश्रव है. कुगुरुवोंका पक्ष ग्रहण करके मूर्ख लोग आश्रवद्वार को अजीव कहते हैं सो पीपल बंधी मुर्ख समान तांणते हैं. यथा जैसे येक दृष्टिबंध मंत्रवादी येक गाम में आया और अपना तमासा करके लोकोंको आश्चर्य उपजाने लगा जितने तमासबीन थे उन सबकी नजर बंध करके पीपलके दरख्तके कोई पदार्थ रस्सीसें मजबूत बांध दीया और उन तमास बीनोंको कहा सब मिलके इसे खींचो ये पदार्थ निसहाय और पीपलसें कितना दूर है तब सब तमासबीनोंने मिलके उसे खेंचा परन्तु वो तो थोडी दूरभी नहीं सरका इतनी देरमें येक आदमी ग्रामान्तर जाता हुवा उस जगह आया उसकी नजर बंधी हुई नहीं थी तब वोह देखके तमास बीनोंसें कहने लगा तुम लोक बडे मूर्ख हो पीपलके बंधी हुई तुमसें कैसें खिंचेगी ये सुनके तमासबीन कहने लगे कहां बंधी हुई है हम सब लोक देखें सो तो झूठे और तू येकला सच्चा भला येह भी कोई वात है हमारे नेत्र नहीं है? क्या हम सर्व अंधे हैं। यह कहके खेंच तांण करने लगे परन्तु उस ग्रामान्तर जाने वाले और सत्य कहने वाले की बात किसीने भी न मानी ऐसेही दीर्घ कर्मी जीवोंके ज्ञान नेत्र मिथ्यात्व मयी मंत्रसें कुगुरुवोंने बंधकर रख्खे हैं जिससे वो लोक सद्गुरुवोंका कहना तो मानते हैं नहीं और अपनी जिद करके जीवके लक्षणोंको अजीव श्रद्धते हैं परन्तु येह नहीं समझते कि मिथ्यात्व आश्रव है सो विपरीत श्रद्धा है और विपरीत श्रद्धना किसकी है तथा हिन्साके अत्याग भाव किसके हैं और शब्दादिक का अभिलाषी कौन है कषायी कोन है मन वचन कायाके जोगोंका व्यापार किसका है तथा मेरा तेरा समझना किसका है और पंच इन्द्रियोंकी विषयमें प्रवर्तता और विषयी कोन होता है, परंतु इत्यादि उपरोक्त सब जीवके कार्य हैं तात्पर जीवके समपूरण असंख्याता प्रदेश पूर्व कर्मानुसार चला चल होते हैं तब न्यूतन कर्म प्रदेसोंको श्रवता है अर्थात् ग्रहण करता है सो जीव है बस उसहीका नाम आश्रव द्वार है, और

चंचलताको रोक कर आतम प्रदेश स्थिर होते हैं उसहीका नाम संवर है तात्पर जीवके अथिर प्रदेश आश्रव है और स्थिर प्रदेश संवर है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

जोगपरिणामिकनें उदयभाव । त्यांनें जीव कह्या इण न्याय । अजीव तौ उदय भावनांहि । ते देखल्यो सूत्र मांहि ॥५७॥ पुन्य निरवद्य जोग सुं लागेछै आय । ते करणी निरजरारी छै त्हाय । पुन्य तो सहिजें लागैछै ताहि । तिणसुं जोग छै आश्रव मांहि ॥५८॥ जेजे संसारनां छै कांम । त्यांरा किण २ रा कहुं नांम । ते सघलाछै आश्रव तांम । ते सघला छै जीव परिणाम ॥५९॥ कर्मां नैं लगावै ते आश्रव । लगावै तेहिज छै जीव द्रव्य । लागै ते पुद्गल अजीव । लगावै तेतो निश्चयछै जीव ॥६०॥ कर्मांरोकरता छै जीव द्रव्य । करता पणों तेहिज आश्रव । कीधा हुवा ते कर्म कहाय । तेतो पुद्गल लागैछै आय ॥ ६१ ॥ त्यांरै गूढ मिथ्यात अंधारो ते पिछाणें नहीं आश्रव द्वारो । त्यांनें संवलो तो मूल न सूझै । तेतो दिन २ अधिक अलूझै ॥६२॥ जीवैर आडा छै कर्म आठ । तेतो लगरह्या पाटान पाट । त्यांमें घातिया कर्मछै च्यार । मोक्षमार्गरा

रोकण हार ॥ ६३ ॥ और कर्मांसुं जीव ढंकाय ।
मोह कर्म थकी विगडाय । विगड्यो करे सावझ
व्यापार । तेहिजछै आश्रवद्वार ॥ ६४ ॥ चारित्त
मोह उदय मतवालो । तिणसुं सावद्यरो न हुवै
टालो । ते सावद्यरो सेवण हारो । तेहिजछै आश्रव
द्वारो ॥ ६५ ॥ दरशण मोह उदय श्रद्धे ऊंधो ।
हाते मारग न आवे सूधो । ऊंधी श्रद्धारो श्रवण
हार । ते मित्थ्यात्व आश्रवद्वार ॥ ६६ ॥ मूढ कहे
आश्रव नैं रूपी । वीरकह्यो आश्रवनैं अरूपी । सूत्रां
मैं कह्यो ठाम ठाम । आश्रवनैं अरूपी तांम
॥ ६७ ॥ पांच आश्रवनैं अव्रत तांम । मांठी लेश्या
तणां परिणाम । मांठी लेश्या अरूपीछै त्हाय ।
तिणरा लक्षणरूपी किम थाय ॥ ६८ ॥ ऊजला
नें मैला कह्या जोग । मोह कर्म संजोग विजोग ।
ऊजला जोग मैला थाय । कर्म झडियां ऊजला
होजाय ॥ ६९ ॥ उत्राध्ययन गुणतीसम म्हांय ।
जोग समुचय कह्या जिनराय । जोग सचे निर-
दोषमें चाल्या । त्यानें साधांरा गुण मांहि घाल्या
॥७०॥ साधांरा गुणछै शुद्धमांन । त्यांनें अरूपी
कह्या भगवान । त्यां जोग आश्रव नें रूपी

थाप्यां । त्यां वीरनां बचन उथाप्या ॥ ७१ ॥ ठाणा अंग तीजा ठाणा मंझार । जोगविर्य तणों व्यापार । तिणसुं अरूपी छै भाव जोग । रूपी श्रद्धै ते श्रद्धा अजोग ॥ ७२ ॥ जोग आतमा जीव अरूपी । त्यां जोगांनें कहै मूढरूपी । जोग आतमा जीव परिणाम । ते निश्चय अरूपीछै तांम ॥७३॥ आश्रव जीव श्रद्धावण ताहि । जोड कीधी पाली सहर मांहि । अट्ठार सह पचावन मंझार । आसोज सुध बारस रविवार ॥ ७४ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

जीवके प्रदेश चंचल होते हैं तबही कर्मों के प्रदेशों को ग्रहण करते हैं उसही का नाम आश्रवहै और स्थिर होके कर्मग्रहण नहीं करते उसका नाम संबर हैं, तात्पर निरजराकी करणी करते शुभ जोगोंकी वर्त्तनासें जीव पुण्य उपारजन करताहै और मोहकर्मके उदय सें अशुभ जोगोंकी वर्त्तना सें जीव पापोंपार्जन करताहै पुण्य वा पापके प्रदेशों का उपारजन करने वाले जीवके प्रदेश है उनही का नाम आश्रवद्वार है, कर्मों का उपारजन या करता करणी कारण हेतु और उपाय वे सब नाम आश्रवकेहीहै किन्तु जिनहों के घटमें मिथ्यात्वमयी महा घोरान्धकार है उन्हों की श्रद्धा आश्रवको अजीव श्रद्धनें कीहै परंतु वो लोग यह नहीं विचारतेहैं कि जीवके अष्टकर्म अनादि कालसें लग हुये हैं जिस में च्यार घातिक कर्मोंनें जीव के अनन्त चतुष्टय गुणोंकी घात करी हैं जिसमें मोह कर्म सें जीव बिगडके अनेक तरहं के कुकार्य करके अशुभ कर्म उपारजन करता है और कराता है इस ही लिये करता जीव का नाम आश्रव है, चारित्रमोह के उदय सें जीव

सावद्य करणी करके पाप लगाता है और दरशण मोह के उदय से मिथ्यात्वी होताहै मिथ्याश्रद्धना ही मिथ्यात्व आश्रव है, भगवान नें तो आश्रवको अरूपी जगह २ कहा है परंतु मूढ मती आश्रवको रूपी कहते हैं पांच आश्रवों को तथा अव्रतको कृष्णादि तीन मांठी अर्थात् खोटी लेश्याके परिणाम तथा लक्षण कहे हैं जो मांठी लेश्या जीवहै तो उसके लक्षण अजीव कैसे होसक्ते हैं, फिर मोह कर्म के संयोग से मैले और वियोगसे ऊजले जोग कहे हैं जोगहीं से ही आश्रव है, उत्ताध्ययनके गुणतीसमां अध्ययनमें जोग समुच्चय कहे हैं जोगों का वर्णन साधुवोंके गुनों में है साधु के गुन शुद्ध हैं निरमल हैं अरूपी हैं, तथा ठाणांगके तीसरे ठाणे कहा हैं मनवचन काया के भाव जोगहै सो जीव का विर्य गुनका व्यापार हैं इस ही लिये जोग आतमा कही है जोग आतमा है सो अरूपी है और करता है सो जोग आश्रव है, आश्रवको जीव श्रद्धानें के लिये स्वामी श्री भीखनजीने मारवाड देशान्तर गत पाली शहरमें सम्वत् १८५५ आसोज सुद १२ रविवार को ढाल जोडके यथा तथ्य विस्तार कहाहै जिसका भावार्थमैंने तुच्छ बुद्धी प्रमाण किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे वार-म्वार मिच्छामिदुक्कडं है ।

आपका हितेच्छु

जौंहरी गुलाबचंद लूणिया

॥ दोहा ॥

आश्रव कर्म आवानां बारणां । त्यांनें विकल कहै छै कर्म ॥ आश्रव द्वार नें कर्म येक हिज कहै। ते भूला अज्ञानी भर्म ॥ १ ॥ कर्म आश्रव छै जुवा जुवा । जुवा जुवा त्यांरा सुभाव ॥ कर्म नें

आश्रव येक ही कहै। त्यांरे मूढ न जाणैं न्याव ॥२॥ वलि आश्रव नें रूपी कहै। आश्रव नें कहै कर्म द्वार ॥ द्वार नें द्वार में आवै तेह नें। येक कहै छै मूढ गिमार ॥ ३ ॥ तीन जोगां नें रूपी कहै। त्यांनें हिज कहै आश्रव द्वार ॥ वलि तीन जोगां नें कहै कर्म छै। ओ पिण नहीं विचार ॥ ४ ॥ आश्रव तणां वीस भेद छै। ते जीव तणीं पर्याय ॥ ते कर्म तणा कारण कह्या। ते सुणिजो चित्त-ल्याय ॥ ५ ॥

॥ ढाल ॥

चतुर विचारकरि नें देखो ॥ एदेशी ॥

मित्थ्यात आश्रव तो ऊंधो श्रद्धै छै। ऊंधो श्रद्धैं ते जीव साक्षातो रे ॥ तिण मिथ्यात आश्रव नें अजीव श्रद्धै छै। त्यांरा घट मांहि घोर मिथ्या-तो रे ॥ आश्रव पदार्थरो निरणो कीजो ॥ १ ॥ जे जे सावद्य काम त्याग्या नहीं छै। त्यां री आसा वंछा रही लागी रे ॥ तिण जीव तणां परिणाम छै मैला। अत्याग भाव छै अव्रत सागी रे ॥ आ ॥ २ ॥ प्रमाद आश्रव जीव परिणाम छै

मैला । तिण सुं लागै निरंतर पापोरे ॥ तिण नें अजीव कहै छै मूढ मिथ्याती । तिणरै खोटी अ-द्धारी थापोरे ॥ आ ॥ ३ ॥ कषाय आश्रव नें जीव कह्यो जिनेश्वर । कषाय आतमां कहि छै तांमोंरे ॥ कषाय करवारो सभाव जीव तणुं छैं । कषाय छै जीव परिणामों रे ॥ आ ॥ ४ ॥ जोग आश्रव नें जीव कह्यो जिनेश्वर । जोग आतमां कहि छै तांमों रे । तीनूं हीं जोगांरो व्यापार जीव तणुं छै । जोग छै जीव परिणामोंरे ॥ आ ॥५॥ जीवरी हिन्सा करै ते आश्रव । हिन्सा करै ते जीव साच्चातो रे । हिन्सा करै ते परिणाम जीव तणां छै । तिण में शंका नहीं तिलमातो रे ॥आ॥६॥ झूठ बोलै ते आश्रव कह्यो जिनेश्वर । झूठ बोलै ते जीव साच्चातो रे । झूठ बोलै ते परिणाम जीव तणां छै । तिण में शंका नहीं असमातो रे ॥ आ ॥ ७ ॥ चोरी करै ते आश्रव कह्यो छै । चोरी करै ते जीव साच्चातो रे ॥ चोरी करवा प-रिणाम जीव तणां छै । तिण में शंका नहीं तिल-मांतो रे ॥ आ ॥ ८ ॥ मैथुन सेवै ते आश्रव कह्यो छै । मैथुन सेवै ते जीवो रे । मैथुन परिणा-

म जीव तणां छै। तिणसूं लागै छै पाप अजी
वो रे ॥ आ ॥ ६ ॥ परिग्रहो राखै ते आश्रव कह्यो
छै। परिग्रहो राखै ते पिण जीवो रे॥ जीव परिणाम
छै मूर्छा परिग्रह। तिणसुं लागै छै पाप अजी
वो रे ॥ आ ॥ १० ॥ पांच इन्द्रियां नें मोकली
मेलै ते आश्रव। मोकली मेलै ते जीव जाणोंरे॥
राग द्वेष आवै शब्दादिक ऊपर। यानें जीवरा
भाव पिछाणोंरे ॥ आ ॥११॥ श्रुतइन्द्रीतो शब्द
सुणैं छै। चक्षुइन्द्री रूप ले देखो रे ॥ घ्राण इन्द्री
गंध नें भोगवै छै। रसइन्द्री रसस्वाद विसेखो रे ॥
आ ॥ १२ ॥ स्पर्शइन्द्री स्पर्श नें भोगवै छै।
पांच इन्द्रियां नुं यह सुभावो रे। यांसुं राग नें द्वेष
करै ते आश्रव। तिण नें जीव कहिजे इण न्या-
वो रे ॥ आ ॥ १३ ॥ तीनूं जोगा नें मोकला मेलै
ते आश्रव। मोकला मेलै ते जीवो रे ॥ त्यांनें
अजीव कहै ते मूढ मिथ्याती। त्यांरा घट में नहीं
ज्ञान दीवो रे ॥ आ ॥ १४ ॥ तीनूं जोगां रो
व्यापार जीव तणों छै। ते जोग छै जीव परिणा-
मों रे ॥ मांठा जोग छै मांठी लेश्या नां लक्षण।
जोग आतमा कही छै तांमो रे ॥ आ ॥ १५ ॥

मंड उपगरणसूं कोई करै अजयणां । तेहिज आ-
श्रव जाणों रे ॥ आश्रव भाव तो जीव तणां छै ।
यानैं रूडी रीत पिछाणोंरे ॥ आ ॥ १६ ॥ सुची
कुसंग सेवै ते आश्रव वीसमूं । सुची कुशंग सेवै
ते जीवो रे ॥ सुची कुशंग सेवै तिण नें अजीव
श्रद्धै छै । त्यांरै ऊंडी मिथ्यातरी नींवो रे ॥ आ
॥ १७ ॥ द्रव्ये जोगां नै रूपी कह्या छै । ते भाव
जोगांरै लारो रे ॥ द्रव्ये जोगांसू कर्म न लागै ।
भाव जोग छै आश्रवद्वारो रे ॥ आ ॥ १८ ॥
आश्रव नैं कर्म कहै छै अज्ञानी । तिण लेखै ऊंधी
दरशी रे ॥ आठ कर्मा नें चोफरसी कहै छै । काया
रा जोग तो छै अठ फरसी रे ॥ आ ॥ १६ ॥
आश्रव नैं कर्म कहै त्यांरी श्रद्धा । ऊठी जठाथी
कूडी रे ॥ त्यांरा बोल्यां री ठीक पिण त्यांनै नहीं
छै । त्यांरी हीया निलाडनीं फूटी रे ॥ आ ॥२०॥

॥ भावार्थ ॥

शास्त्रों में तो आश्रव को कर्मों का करता कहा है करता है सो जीव है जीव है सो अरूपी है परंतु अज्ञानी जीव भ्रम में भूल के आश्रव को अजीव कहते हैं अर्थात् कर्मों को ही आश्रव श्रद्धते हैं, लेकिन आश्रव और कर्म अलग अलग हैं, आश्रव द्वारा जीव कर्म लगाता है तो विचारणा चाहिए कि द्वार और द्वार होके

आने वाले येक कैसें होसक्ता है, द्वार है सो आश्रव है जीव है अरूपी हैं, और आने वाले है सो कर्म है अजीव हैं रूपी है तो येक कैसें हुवा-परंतु मूढ लोग कहते हैं तीन जोग रूपी है जोग है सो आश्रव है तथा तीनूं जोगों को कर्म कहते हैं कर्म है सो अजीव है इसलिये आश्रव अजीव हैं ऐसा प्ररूपते हैं उन लोगों को आश्रव को यथार्थ समझा नें के लिये आश्रव के वीस बोलों को विस्तार पूर्वक यथा तथ्य कहते हैं—

१-ऊंधीश्रद्धा अर्थात् मिथ्या श्रद्धनां सोही मिथ्यात आश्रव जीव है श्रद्धा और श्रद्धने वाला येक है।

२-जो जो सावद्य कार्य त्यागे नहीं हैं जिन्हों की आशा वान्छा निरंतर लगी हुई है आतम प्रदेश अत्याग भाव पणें परिणमें है उसही का नाम अव्रत आश्रव है जिस सें निरंतर पाप लगता है।

३-प्रमाद अर्थात् निरवद्य करणी सें अण उत्साह पणें जीव परिणम्यां है सो प्रमाद आश्रव है, जहांतक अप्रमाद गुणस्थान नहीं पावेगा तहांतक प्रमाद आश्रव द्वारा निरंतर पाप लगता है।

४-क्रोध मान माया लोभ ये च्यारूं कषाय पणें जीव परिणम्यां सो कषाय आश्रव है जहां तक अकषायी न होगा तहां तक कषाय आश्रव द्वारा निरंतर पाप लगता है इसलिये कषायी जीव का नाम कषाय आतमा है. सोही कषाय आश्रव जीव के परिणाम है।

५-मन वचन काया के जोगों का व्यापार जीव का है जोगों पणें परिणम्या सो जोग परिणामी जीव है जोग आतमां कही है जोगों द्वारा कर्म ग्रहण करे उसही को जोग आश्रव कहते हैं।

६-प्राणातिपात आश्रव अर्थात् जीव हिन्सा करे, तो जीव हिन्सा करे सो जीव है, हिन्सा जीव के परिणाम है सोही प्राणातिपात आश्रव है।

७-मृषावाद आश्रव अर्थात् झूठ बोलै सो आश्रव, झूठ बोलै सो जीव है, झूठ बोलै सो जीव के ही परिणाम है।

८-चोरी करै ते आश्रव कहा है, चोरी करै सो जीव है, अदत्ता दान लेने को जीव परिणम्या सो जीवके परिणाम है, तथा चोरी करने के परिणाम है सोही आश्रव है।

९-मैथुन सेवे ते आश्रव कहा है, मैथुन सेवै सो जीव है, मैथुन सेने के परिणाम जीव के हैं सोही आश्रव है।

१०-परिग्रहा रक्खे सो आश्रव, परिग्रहा रक्खे सो जीव है, जीव के परिणाम है सोही आश्रव है।

११-श्रोत १ चक्षू २ घ्राण ३ जिह्वा ४ स्पर्श ५ यह पांचूं इन्द्रियों को मोकली मेलै अर्थात् शब्दादिक तेवीस विषयोंपे राग द्वेष आवे सो आश्रव है, इन्द्रियों को मोकली मेलै सो जीव है। श्रोत इन्द्री का स्वभाव ३ प्रकार के शब्द सुनने का, चक्षू इन्द्री का स्वभाव ५ प्रकार के वरण देखने का, घ्राण इन्द्री का स्वभाव २ प्रकार के गंध सूंघने का, रस इन्द्रीका स्वभाव ५ प्रकार के रसों का स्वाद जानने का, और स्पर्श इन्द्री का स्वभाव ८ प्रकार के स्पर्श भोगने का है, पांचूं इन्द्रियां हैं सो तो क्षयोपसम भाव है परंतु इन्द्रियों की विषय में लिप्त रहना सो जीव के भाव है, मोह कर्मोदय सें विषयी होके राग द्वेष करै सो आश्रव है जीव के परिणाम है।

१६-मन १ वचन २ काया ३ मोकली मेलै सो आश्रव कहा है अर्थात् तीनूं जोगों की प्रवर्तना जीवकी है।

१९-भंडोपगरण सें अजयणा करै सो आश्रव, अर्थात् वस्त्र पात्र आदि वस्तुवों सें अयतना करने के भाव जीव के हैं सोही आश्रव है।

२०-सुचिकुशग सेवै ते आश्रव जीव है जीवके परिणाम है सोही आश्रव है।

तात्पर्य उपरोक्त बीस आश्रव द्वार कहे सो जीव के परिणाम हैं परिणाम है सोही आश्रव द्वार जीव है; मन बचन काया ये तीन प्रकार के जोग हैं सो द्रव्य जोग तो अजीव है, रूपी है, और भाव जोग है सो जीव है, अरूपी है, इसलिये ही जोग आतमां कही है, भाव जोगों के संग ही द्रव्य जोग कहे हैं, द्रव्य जोगों से तो कर्म लगते नहीं, वो तो अजीव है, और भाव जोगों से कर्म लगते हैं इस से भाव जोगों को आश्रव कहा है, कई अज्ञानी आश्रव और कर्म येकही श्रद्धते हैं तथा तीनूं द्रव्य जोगों को आश्रव कहते हैं, मगर वे मोह अंध जीव अपनी भाषा के आप ही अज्ञान है क्योंकि काया का द्रव्य जोग तो आठ स्पर्शी है, और कर्म है सो च्यार स्पर्शी है, तो कर्म और जोग येक कहां ठहरा महानुभावो स्वामी श्री भीखनजी का कहना है कि आश्रव को कर्म कहे उन की श्रद्धा तो ऊठी वहीं से झूंठी है, उन के हीये कहिये हृदय और लिलाड कहिये मगज ये दोनूं फूटे हैं अर्थात् ज्ञान चक्षू रहित हैं, जिस से हृदय और दिमाग में ऐसा नहीं विचारते हैं कि कर्म है सो क्या है तथा करता है सो कोन है, इसलिये इन दोनूं को यथा तथ्य श्रद्धाने को कृपाकरिके फरमाया है कि बीस बोलों में सावद्य कितने और निरवद्य कितने हैं, तथा किस किस कर्म के उदय से जीव कैसा कैसा कर्तव्य करता है सो विस्तार पूर्वक कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

बीस आश्रवमें सोलैतो एकान्त सावद्य। ते पाप आवनां छै द्वारोरे॥ जीवरा कर्त्तव्य मांठा ते खोटा। ते पाप तणां करतारोरे ॥ आ ॥ २१ ॥ मन वचन कायारा जोग व्यापार। वलि समुचय जोग व्यापारो रे ॥ ये च्यारूंहीं आश्रव सावद्य निरवद्य।

पुन्य पाप तणां छै द्वारो रे ॥ आ ॥ २२ ॥ मिथ्यात अव्रतनें प्रमाद । कषायनें जोग व्यापारो रे॥ ये कर्म तणां करता जीवरै छै । पांचूंही आश्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ २३ ॥ यामें च्यारूं आश्रव सभाविक उदारा । जोगमें पनरे आश्रव समायारे ॥ जोग कर्त्तव्य ते सभाविक पिण छै । तिणसुं जोगमें पनरे आयारे ॥ आ ॥ २४ ॥ हिन्सा करै ते जोग आश्रव छै । झूंठ बोलै ते जोग ताह्यो रे ॥ चोरीसुं लेनें सुचि कुशग सेवैते । पनरैंही आया जोग मांह्यो रे ॥ आ ॥ २५ ॥ कर्मारो करता तो जीव द्रव्य छै । कीधा हुवा ते कर्मों रे । कर्मनें करता येकज श्रद्धै । ते भूला अज्ञानी भ्रमो रे ॥ ॥ आ ॥ २६ ॥ अट्ठारह पाप ठाणां अजीव चौस्पर्शी । ते उदय आवै तिणवारो रे ॥ जब जुवा जुवा कर्त्तव्य करै अट्ठारह । ते अठारैही आश्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ २७ ॥ उदय आवै ते मोह कर्म छै । ते पापरा ठाणां अठारो रे ॥ त्यांरा उदय सें अट्ठारा कर्त्तव्य करै छै । ते जीव तणां व्यापारो रे॥ ॥ आ ॥ २८ ॥ उदयनें कर्तव्य जुदा जुदा श्रद्धै। आतो श्रद्धा सूधी रे ॥ उदयनें कर्तव्ययेक हिज

अछै। अकल तिणांरी ऊंधी रे ॥आ॥२६॥ प्राणा-
तिपात जीवरी हिन्सा करैते। प्राणातिपात आ-
श्राव जांणो रे ॥ उदय हुवोते प्राणाति पाप ठाणों
छै। त्यांनै रूडी रीत पिछाणोंरे ॥ आ ॥ ३० ॥
भूंठ बोलैते मृषाबाद आश्रव छै। उदय छै मृषा-
बाद ठाणों रे ॥ भूंठ बोलैते जीव उदय हुवां कर्म।
यां दोनांनें जुदा जुदा जाणोंरे ॥ आ ॥ ३१ ॥
चोरी करै ते अदत्ता दान आश्रव छै। उदय हुआं
अदत्ता दान ठाणों रे ॥ ते उदय हुआं जीव चोरी
करै छै। ते जीवरा लत्तण जांणों रे ॥आ॥३२॥
मैथुन सेवै ते मैथुन आश्रव। ते जीव तणां परि-
णामों रे ॥ ते उदय हुआ मैथुन पाप स्थानक छै।
मोह कर्म अजीव छै तांमो रे ॥ आ ॥ ३३ ॥
सचित अचित मिश्र ऊपर ममता राखै। तेतो परि-
ग्रह आश्रव जाणों रे ॥ ते ममता करै मोह कर्म
उदयसूं। उदय हुअै ते परिग्रह पापठाणोंरे ॥
॥ आ ॥ ३४ ॥ क्रोध सुं लेनैं मित्थ्या दरशण
लागि। उदय हुअै ते पापरो ठाणोंरे॥ यांरा उद-
यसें सावद्य कर्त्तव्य करै छै। ते जीवरा लत्तण
जाणों रे ॥ आ ॥ ३५ ॥ सावद्य कामां तो जी-

वश कर्त्तव्य । उदय हुआ ते पाप कर्मोरे ॥ यां दोनूं नें कोई येकज श्रद्धै । ते भूला अज्ञानी भ्रमोरे ॥ आ ॥ ३६ ॥ आश्रव तो कर्म आवानां द्वार । ते जीवतणां परिणामोंरे ॥ द्वार मांहि आवै ते आठ कर्म छै । ते पुद्‌गल द्रव्य छै तांमोरे ॥ ॥ आ ॥ ३७ ॥ मांठा परिणामनें मांठी लेश्या । वलि मांठा जोग व्यापारोरे ॥ मांठा अध्यव सायनें मांठा ध्यान । ते पाप आवानां द्वारोरे ॥ आ ॥ ॥ ३८ ॥ भला परिणामनें भली लेश्या । भला निरवध जोग व्यापारोरे ॥ भला अध्यवसायनें भला ध्यान । ते पुन्य आवानां द्वारोरे ॥ आ ॥ ॥ ३९ ॥ भला भूंडा परिणाम भली भूंडी लेश्या । भला भूंडा जोगछै तांमोरे ॥ भला भूंडा अध्यवसाय भलाभूंडाध्यान । ते जीव तणां परिणामोंरे ॥ आ ॥ ४० ॥ भला भूंडा परिणाम तो जीवतणां छै । भूंडा पापरा बारणां जाणोंरे ॥ भलाभाव छै ते संबर निरजरा । पुन्य सहजें लागै छै आंणोरे ॥ आ ॥ ४१ ॥

॥ भावार्थ ॥

बीस आश्रव कहे जिसमें से सोलहतो एकान्त सावद्य हैं सो आंठा कर्तव्य हैं इस लिये पाप आने के द्वार हैं बाकी च्यार आश्रवं अर्थात जोग मन वचन काय यह सावद्य निरवद्य दोनूं हैं सो पुन्य और पाप आने के द्वार हैं, तथा बीस आश्रवों में से मिथ्यात अव्रत प्रमाद और कषाय येह च्यार आश्रवतो सभाविक उदय सें हो रहे हैं और प्राणातिपात आश्रव सें लेके सुचि कुशग आश्रव तक पंदरह आश्रव हैं सो जोग आश्रव में गर्भित हैं अर्थात् हिन्सा करै सो जोग आश्रवं है यावत् सुचि कुशग सेवै सो जोग आश्रव है थानें यह पंदरह जोगों की प्रेरणा सें होते हैं तथा पांचमां समुचय जोग आश्रव है सो जोगकर्तव्य सुभाविक भी होता है अर्थात् जहांतक सजोगी है तहांतक जोग आश्रव है, कर्मों का करता हैं सो जीव द्रव्य है और किये सो कर्म हैं वे अजीव हैं इसलिये कर्ता और कर्म यह दोनूं जुदे जुदे हैं; अब आश्रव कैसें होता है सो कहते हैं-प्राणातिपात पाप स्थानक से लेके मिथ्या दरशण शल्य ये अठारह पाप स्थानक हैं सो च्यार स्पर्शिया पुद्गलों का पुञ्ज हैं सो अजीव है मोह कर्म के भेद हैं यह जब जीव के उदय आते हैं तो जीव इनमें प्रवर्तता है तब अशुभ कर्म ग्रहण करता है जिस सें जीव को आश्रव कहा है, जैसें जीव के प्राणातिपात पाप स्थानक उदय हुआ सो तो अजीव और उसमें प्रवर्त्या सो जीव उदय भाव प्राणातिपात आश्रव है, ऐसें ही अट्ठारह कों जाननां, तात्पर्य उदय और कर्तव्य यह दोनूं जुदे जुदे हैं इनको पृथक पृथक समझैं यह श्रद्धा तो सुधी है और इन्हें येकही श्रद्धै यह श्रद्धा ऊंधी अर्थात् विरुद्ध है इसलिए न्याय दृष्टी करिके विचारणा चाहिये कि आश्रव है सो कर्म आने के द्वार है, जीव के व्यापार हैं, और द्वारों में होके आने वाले कर्म हैं वे अजीव हैं, परंतु आश्रव द्वार जीव हैं, खोटे मन परिणाम, खोटी लेश्या, खोटे जोग व्यापार, खोटे अध्यवसाय, खोटे ध्यान है सो यह सब जीव परिणाम है पाप आनें के द्वार हैं, और भले मन परिणाम यावत् भला-

ध्यान यह सब जीव के परिणाम और पुण्य आने के द्वार हैं, पुण्य पाप आने के द्वार हैं सो ही आश्रव है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

निरजरारी करणी निरवद्य करतां । कर्म तणूं त्तय जाणोंरे । जीवतणां प्रदेश चलै छै । त्यांसुं पुन्य लागै छै आंणोंरे ॥ आ ॥ ४२ ॥ निरजरारी करणी करै तिण काले । जीवरा चलै सर्व प्रदेशोरे । जब संचर नाम कर्म उदय भाव । तिण सूं पुन्य तणूं छै प्रवेशोरे ॥ आ ॥ ४३ ॥ मन बचन कायारा जोग तीनूं ही । पसस्थनें अपसस्थ चाल्यारे । अपसस्थ जोगतो पापरा द्वार । पसस्थ निरजरारी करणी में घाल्यारे ॥ आ ॥ ४४ ॥ अपसस्थ द्वारतो रूंधणां चाल्या । पसस्थ उदीरणां चाल्यारे । रूंधतां उदीरतां निरजरारी करणीं । पुन्य लागै तिण सूं आश्रव में घाल्यारे ॥ आ ॥ ४५ ॥ पसस्थ अपसस्थ छै जोग तीनूं हीं । त्यांरा बासठ भेद छै ताह्योरे । ते सावद्य निरवद्य जीवरी करणी । ते सूत्र उववाई मांह्योरे ॥ आ ॥ ४६ ॥ जिन कह्यो सतरे भेद असंजम । असंजम ते अब्रत जाणोंरे । अब्रत

ते आसा वंछा जीव तणीं छै । त्यांनै रूडी रीत पिछाणोंरे ॥ आ ॥ ४७ ॥ मांठा २ कर्तव्य मांठी २ करणीं । सर्व जीव तणा व्यापारों रे । जिन आज्ञा बाहरला सर्व कामां ते । सघला ही आश्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ ४८ ॥ मोह कर्म उदय जीवरै च्यार संज्ञा । ते पाप कर्म ग्रहै तांणो रे । पाप कर्मां नैं ग्रहै ते आश्रव छै । ते जीवरा लक्षण जांणो रे ॥ आ ॥ ४९ ॥ उठाण कम्म बल बीर्य पूर्षाकार प्राक्रम । यांरा सावद्य व्यापारो रे । तिण सूं पाप कर्म जीवरै लागै छै । ते पिण जीव छै आश्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ ५० उट्ठाण कम्म बल बीर्य पूर्षाकार प्राक्रम यांरा निरवद्य व्यापारो रे । त्यासुं पुन्य कर्म जीवरै लागै छै । ते पिण जीव छै आश्रव द्वारो रे ॥ आ ॥ ५१ ॥ संजती असंजती संजतासंजती । ते तो संबर आश्रव द्वारो रे । ते संबर नें आश्रव दोनूं हीं तिण में । शङ्का नहीं छै लिगारो रे ॥ आ ॥ ५२ ॥ इम ब्रती अब्रती नें ब्रताब्रती । इम पचखाणी जाणों रे । इम पंडिया बाला नें बालपंडिया । जागरा सूता येम पिछाणों रे ॥ आ ॥ ५३ ॥

इम संवूडा असंवूडा नें संवूडा असंवूडा । धम्मिया अधम्मिया नांमो रे । धम्मवचसाईया इम हिज जाणों । तीन तीन बोल छै तांमो रे ॥ आ ॥ ५४ ॥ ये सघला बोल छै आश्रव नें संवर त्यांनें रूडी रीत पिछाणों रे । केई आश्रव नें अजीव श्रद्धै छै । ते पूरा छै मूढ अयाणों रे ॥ आ ॥ ५५ ॥ आश्रव घटियां संवर वधे छै । संवर घटियां आश्रव वधाणों रे । किसो द्रव्य वधियो किसो द्रव घटियो । इण नें रूडी रीत पिछाणों रे ॥ आ ॥ ५६ ॥ अव्रत उदय भाव जीवरा घटियां । व्रत वधे क्षयोपस्म भावो रे । ये जीवतणां भाव घटियां नें बधियां । आश्रव जीव कह्यो इण न्यायो रे ॥ आ ॥ ५७ ॥ इम सतरे भेदे असंजम ते अव्रत आश्रव । ते आश्रव निश्चय जीव जाणों रे । सतरे भेद संजम नें संवर कह्यो जिन । ते जीवरा लक्षण पिछाणों रे ॥ आ ॥ ५८ ॥ आश्रव नें जीव श्रद्धावण काजें । जोड कीधी पाली शहर मझारो रे । सम्वत् अठारह पचावन वर्षे । आसोज सुद चौदश भोमवारो रे ॥ आ ॥ ५९ ॥

इति पंचम आश्रव पदार्थ की जोड स्वामी श्री भीषनजी कृत ।

॥ भावार्थ ॥

निरजराकी करणी निरवद्य करते वक्त जीवके सर्व प्रदेश चलायमान होतेहैं तव अनन्त कर्म प्रदेशोंके पुञ्जके पुञ्ज आतम प्रदेशोंसे क्षय अर्थात् अलग होतेहैं वोतो निरजरा यानें निरमला जीव है और उसकी करणी करते संचर नाम कर्मोदय से जीव के उदय भाव निष्पन्न होने सें भले जोगोंकी वर्त्तनां होंती है तव पुण्यमयी शुभकर्मों को जीव ग्रहिता है सो आश्रव है, तात्पर मन वचन कायाके शुभयोगों सें निरजरा होती है इसलिये तो निरजरा की करणीं में यह गर्भित है सो नवपदार्थों में छटा निरजरा पदार्थ जीव है, और इन्हीं योगोंसें पुण्य ग्रहण होते हैं जिससें पांचमां आश्रव पदार्थके बोलों में है, कर्मोंको करता है सोही आश्रव जीव है, मन वचन कायाके जोगोंको प्रसस्त अप्रसस्त कहा है प्रसस्त जोगतो पुण्यके द्वार हैं और अप्रसस्त जोग पापके द्वार है, प्रसस्त द्वारोंको तो शास्त्र में उदीरणा अर्थात् उद्यम करिकें उदय में लाना और अप्रसस्त द्वारोंको रूंधना अर्थात् वंध करना कहा है, उदीरतां या रूंधतां निरजराहो सो तो निर्जराकी करणी है, और उदय भावके जोग वर्त्तते हैं जिन्हांसें कर्म ग्रहण होते हैं वोह भाव जोग आश्रव है, श्री उववाई सूत्र में प्रसस्त अप्रसस्त जोगोंके वासट भेद कहे हैं, तथा भगवतनें सतरह भेद असंजम कहा है असंजम है सो अव्रत है और अव्रत है सो आश्रव है, ठांठे २ कर्त्तव्य और करणी यह जीवका व्यापार है, मोह कर्मके उदयसें च्यार संज्ञा है सो जीव है जिससें पाप कर्म लगता है, तथा उट्ठाण कम्म (कर्त्तव्य) बल वीर्य पूर्षाकार प्राक्रम को आतमा कही है, सावद्य है सो तो पापके करता है और निरवद्य है सो पुण्यके करता है, करता है सोही आश्रव है, संयती १ असंयती २ संजतासंजती ३, व्रती १ अव्रती २ व्रताव्रती ३, पचखानी १ अपचखानी २ पचखानापचखानी ३, पण्डिता १ वाला २ वालापण्डिता ३, जागरा १ सूता २ जागरा सूता ३, संवूडा १ असंवूडा २ संवूडा असंवूडा ३, धर्मी १ अधर्मी २ धर्माधर्मी ३,

इत्यादिक अनेक तरहँ सें तीन ३ बोल कहे हैं सो सर्व बोल आश्रव तथा संवर है, अर्थात् संजती है सो संवर है असंजती आश्रव है और संजतासंजती आश्रव संवर दोनूं है, ऐसे ही सब बोल जानना, तात्पर्य आश्रव कम होने सें संवर वधता है और संवर कम होने सें आश्रव वधता है, विवेकी जीवों को विचारणा चाहिये कि कोनसा द्रव्य घटा और कोनसा वधा, संवरका प्रतिपक्ष आश्रव है, आश्रवका प्रतिपक्ष संवर है, यदि आश्रव अजीव है तो संवर भी अजीव है जो संवर जीव है तो आश्रव भी जीव है, सतरह प्रकारका संजम है सो तो व्रत संवर द्वार है और वही सतरह प्रकारका असंजम है सो अव्रत आश्रव द्वार है, स्वामी श्री भीखनजीका कहना है कि न्यायवादी और मोक्षाभिलाषी जीवों को निरपक्ष होके आश्रव पदार्थको यथा तथ्य श्रद्धना चाहिये तव समदृष्टी होंगे, आश्रव पदार्थ को जीव श्रद्धानेको पाली शहर में ढाल जोडके कहा है, सम्वत् १८५५ आसोज सुद १४ मंगलवार, जिसका भावार्थ मेरी तुच्छ वुद्धि प्रमाण किया इस में कोई अशुद्धार्थ हुआ हो उसका मुझे वारम्वर मिच्छामि दुकडं है।

॥ इति पञ्चम आश्रव पदार्थ ॥

आपका हितेच्छू

श्रा० गुलावचंद लूणिया

॥ अथ षष्टम संवर पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

संवर पदार्थ छट्टो कह्यो । तिणरा थिर भूत प्रदेश ॥ आश्रव द्वारनें रूंधणों । तिणसुं मिटजाय कर्म प्रवेश ॥ १ ॥ आश्रव द्वार कर्म आवानां

वारणां । ते ढांकै संवर द्वार ॥ आतम वस कियां संवर हुओ । ते गुण रतन श्रीकार ॥ २ ॥ संवर पदार्थ ओलख्यां विना । संवर न निपजै कोय ॥ शंका कोई मत राखजो । सूत्र स्हामों जोय ॥ ३ ॥ ते संवर तणां पांच भेदछै । त्यां पांचांरा भेद अनेक ॥ त्यांरा भाव भेद प्रगट कहुं । ते सुणिजो आंणि विवेक ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

॥ पूजजी पधारोहो नगरी सेविया एदेशी ॥

नवही पदार्थ श्रद्धे यथा तथ्य । तिणनें कहिजे समकित निधानहो ॥ भविकजन ॥ पछै त्याग करै ऊंधा श्रद्धणा तणां । ते समकित संवर प्रधान हो ॥ भ ॥ संवर पदार्थ भवियण ओलखो ॥१॥ त्याग किया सर्व सावद्य जोगरा । जावज्जीव पचखाण हो ॥भ॥ आगार नहीं त्यां रे पाप करण तणों । ते सर्व ब्रत संवर जांण हो ॥भ॥सं॥२॥ पाप उदयसुं जीव प्रमादी थयो । तिण पापसुं प्रमाद आश्रव थाय हो ॥ भ ॥ ते पाप उपस्म हुयां कै खय हुयां । अप्रमाद संवर हुवै त्हाय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३ ॥ कषाय कर्म उदय छै जीवरै । तिणसुं कषाय आ-

श्रव छै तांमहो ॥ भ ॥ कषाय कर्म अलगा हुयां
जीवरै । अकषाय संवर हुश्रै श्रांमहो ॥ भ ॥सं॥
॥ ४ ॥ थोडा थोडा सावद्य जोगां नें रूंधियां ।
अजोग संवर नहिं थाय हो ॥ भ ॥ मन बचन
कायारा जोग रूंधै सर्वथा । जब अजोग संवर
हुश्रै तायहो ॥ भ ॥ सं ॥ ५ ॥ सावद्य जोग
मांठा रूंधै सर्वथा । जबतो सर्व ब्रत संवर होयहो
॥ भ ॥ पिण निरवद्य जोग बाकी रह्या तेहनैं ।
तिणसुं अजोग संवर नहिं कोयहो ॥ भ ॥ सं ॥
॥ ६ ॥ प्रमाद आश्रवनैं कषाय जोग आश्रव ॥
। यह तो नहिं मिटै कियां पचखाणहो ॥ भ ॥
येतों सहजैं मिटैछै कर्म अलगा हूयां । तिणरी अंत-
रंग किजोपिछाणहो ॥ भ ॥ सं ॥ ७ ॥ शुभ ध्या-
ननैं लेश्यासुं कर्म काटियां थकां । जब अप्रमाद संवर
थायहो ॥ भ ॥ इमहिज करतां अकषाय संवर हूश्रै ।
इम अजोग संवर होय जाय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ८ ॥
समकित संवर नें सर्व ब्रत संवर । ये तो हुश्रैछै कियां
पचखाणहो ॥ भ ॥ अप्रमाद अकषाय अजोग संवर
हुश्रै । ते तो कर्म खय हुवां जांणहो ॥ भ ॥सं॥६॥
हिंसा झूठ चोरी मैथुन परिगरो । ये तो जोग आश्रव

समायहो ॥ भ ॥ ये पांचूंहीं आश्रवनैं त्यागे दीयां। जव व्रत संवर हुआै तायहो ॥ भ ॥ सं ॥ १० ॥ पांच इंद्रियां नैं मेलै मोकली। त्यानें पिण जोग आश्रव जांणहो ॥ भ ॥ पांच इन्द्री मोकली मेल वारा त्यागछै। ते पिण व्रत संवर त्यो पिछाणहो ॥ भ ॥ सं ॥ ११ ॥ भला भूंडा कर्तव्य तीनूं जोगां तणां। तेतो जोग आश्रवछै तांमहो ॥ भ ॥ त्यां तीनूंहीं जोगां नैं जावक रूंधीयां। जब अजोग संवर हुआै आंमहो ॥ भ ॥ सं ॥ १२ ॥ अजयणा करै भंड उपग्रण थकी। तिण नैं पिण जोग आश्रव जांणहो ॥ भ ॥ सुचिकुशग सेवैते जोग आश्रव कह्यो। त्यांनैं त्याग्यां संवर व्रत पिछाणहो ॥ भ ॥ सं १३ ॥ हिन्सादिक पंदरे तो जोग आश्रव कह्या ॥ त्यानैं त्याग्यां व्रत संवर जांणहो ॥ भ ॥ त्यां पंदरानैं मांठा जोग मांहि गिणयां। निरवद्य जोगांरी करिज्यो पिछाणहो ॥ भ ॥ सं ॥ १४ ॥ तीनूंहीं निरवद्य जोग रूंध्यां थकां। अजोग संवर होय जातहो ॥ भ ॥ ये वीसूंही संवर तणौं व्योरो कह्यो ॥ ते वीसूंही पांच संवर में समात हो ॥ भ ॥ संवर ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब छट्ठा संवर पदार्थ कहते हैं आतम प्रदेशां को संबरे सो संवर अर्थात् आते कर्मों को रोकना और जीवके प्रदेशोंको स्थिर करना उसही का नाम संवर है, तात्पर जीवके प्रदेश कर्मोदय से चलाचल होते हैं तब नूतन कर्मों को ग्रहण करते हैं इसलिये आश्रवद्वार कहा है और वोही प्रदेशस्थिर होते हैं इसलियेउन्हीं जीवके प्रदेशों का नाम संवर द्वार है, तवहीं कहना है कि संवर को यथातथ्य जानें विना संवर नहिं निपजता है, मुख्यपांच प्रकारके संबर हैं इन पांचोके अनेक भेदहैं सो विस्तार पूर्वक कहते हैं,

१-नव पदार्थों को यथा तथ्य श्रद्ध कर अयथार्थ श्रद्धने का त्यागकरें सो सम्यक् संवर है।

२-सर्व सावद्य जोगोंका त्याग करें अर्थात् पाप करनेका आगार किंचित् नहीं तब सर्व व्रत संबर होता है।

३-पाप कर्मके उदय से जीव प्रमादी है इसलिये प्रमाद आश्रव होरहा है, वोही पाप उपसम या क्षय होय तब अप्रमाद संबर होता है।

४-ऐसेही कषाय कर्म जिहांतक जीव के उदयहैं तहांतक कषाय आश्रव है, वोही कषाय कर्म प्रकृति जीवके प्रदेशों से अलग होय तब अकषाय संबर होता है।

५-जोग आश्रवके दो भेदहैं, अशुभ और शुभ योग, थोडे२ अशुभ जोगों को या सर्वथा अशुभ योगों को रूंधने से अयोग संबर नहिं होताहै, अजोग संबर तो शुभ और अशुभ दोनूंहीं प्रकार के योग सर्वथा रूंधे तब होताहै।

उपरोक्त पांचो संबर कहे सो जिसमें से सम्यक् संबर और व्रत संबर येहतो ऊंधी श्रद्धनें और सर्वथा सावद्य जोगों के त्याग करने से होताहै, और बाकी तीन संबर त्याग करनेसे होते नहीं अर्थात् स्वतः हीं कर्मक्षय होनेसे होते हैं।

हिन्सा झूंठ चोरी मैथुन परिग्रह तथा पांचों इन्द्रियोंको मोकली मेलना मन बचन कायाके जोग और भंडोपग्रण सें अजयणा करना तथा सुचि कुशंग सेना यह पंद्रे ही जोग आश्रव है इन को त्यागनें सें ब्रत संबर होता है, अजोग संबर तो सर्वथा जोग, रूधंन सें चोदवें गुणस्थान है ;

॥ ढाल तेहिज ॥

केईकहै कषाय ने जोग आश्रव तणां । सूत्र मैं चाल्या पचखाण हो ॥ भ ॥ त्यांनें त्यागयां विना संवर किण विध हुवे । हिव तिणरी कहूंछूं पिछाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ १६ ॥ पचखाण चाल्या छैं सूत्र में शरीरना । ते शरीर सूं न्यारो हुवां तांमहो ॥ भ ॥ इमहिज कषाय नें जोग पचखाणछै । शरीर पचखाण ज्यूं आंमहो ॥ भ ॥ सं ॥ १७ ॥ सामायक आदि चारित पांचूं भणां । सर्वं ब्रत संबर जांन हो ॥ भ ॥ पुलाग आदि छहुं नियट्ठा ॥ एपिण संबर लिज्यो पिछाणहो ॥ भ ॥ सं ॥१८॥ चारितावरणी खयोपसम हुवां । जब जीवनैं आवै वैराग हो ॥ भ ॥ तब कांमनें भोगथकी विरक्त हुवे । जब सब सावझ दे त्यागहो ॥ भ ॥ सं ॥ ॥ १६ ॥ सर्व सावझ जोगानें त्यागै सर्वथा । ते सर्व ब्रत संबर जांणहो ॥ भ ॥ जब अव्रतरा पाप

न लागै सर्वथा । तेतो चारित्र छै गुण खाणहो ॥
॥ भ ॥ सं ॥ २० धुरसुं तो सामायक चारित्र आ-
दरयो । तिणरैं मोह कर्म उदय रह्या त्हायहो ॥ भ ॥
ते कर्म उदय सें कर्तव्य नींपजै । तिणसुं पापला
गैछे आयहो ॥ भ ॥ सं ॥ २१ ॥ भला ध्याननें
भली लेश्याथकी । मोह कर्म उदय थी घटजाय
हो भ ॥ ते उदय तणां कर्तव्य पिण हलका पडै ।
जब हलका ही पाप लगाय हो ॥ भ ॥ सं ॥२२॥
मोह कर्म जावक उपस्महुवै । जब उपस्म चारित
हूवै तायहो ॥ भ ॥ जब जीव हुवै शीतली भूत
निरमलो । तिणरे पाप न लागै आयहो ॥ भ ॥
॥ सं ॥ २३ ॥ मोहणी कर्म तो जावक खयहूओ ।
जब क्षायक चारित्र हूओ यथाख्यात हो ॥ भ ॥
जब शीतली भूत हूओ निरमलो । तिणसुं पापन
लागै असमातहो ॥ भ ॥ सं ॥ २४ ॥ सामायक
चारित्र लियो छै उदेरि नैं । सावद्य जोगरा करै
पचखाणहो ॥ भ ॥ उपस्म चारित्र आवै मोह उप-
स्मियां । ते चारित इग्यारमैं गुणठाणहो ॥ भ ॥
॥ सं २५ ॥ खायक चारित आवै मोह कर्म नैं
खय कियां । ते नआवै कियां पचखाण हो ॥भ॥

ते आवै शुक्ल ध्यान ध्यायां थकां । चारित्र छेहला तीन गुणठाणाहो ॥ भ ॥ सं ॥ २६ ॥ चारित्रावरणी क्षयोपसम हूयां । क्षयोपसम चारित आवै निधानहो ॥ भ ॥ उपसम हुवां उपसम चारित्र हुवै खय हूआं क्षायक चारित्र प्रधान हो ॥भ॥सं॥२७॥ चारित निज गुन जीवरै जिन कह्यो । ते जीवसुं न्यारा नहिं त्हायहो ॥ भ॥ मोहकर्म अलग हूआं प्रगट्या । त्यांरा गुनसुं हूआ मुनिराय ॥ भ ॥सं॥ ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

कोई कहै कषाय और जोगके पचखाण सूत्र मैं कहेहैं तोफिर अकषाय संवर त्याग करनें सें क्यों नहिं होता है जिसका उत्तर यह है कि सूत्रमें तो शरीर के पचखाण कहेहैं लेकिन शरिर के पचखाण कैसें होसके हैं क्योंकि यह शरीर तो जीवके चर्म स्वासो स्वास पर्यंत है तब त्याग कैसें होय परंतु शरीर सें अशुभ योग न वर्ताना या शरीर की सार संभार न करना ये त्याग होते हैं वैसेही कषाय न करना प्रमाद न करना जोगों की चंचलता को रोकनां ये त्याग होते हैं, क्योंकि कषाय और प्रमाद करना ये जोगों की प्रवर्तना है इसलिये इन्हें त्यागनें सें साधु के व्रत संवर पुष्ट होता है परन्तु कषाय और प्रमादके त्याग करनेंसें अकषाय तथा अप्रमाद संवर नहिं होता है, एसेही सर्व सावद्य जोगोंको त्याग कर किञ्चित किञ्चित शुभ जोगों को रूंधनें सें अजोग संवर नहिं होता, अजोग संवर तो सर्वथा प्रकार जोगों को रूंधनेंसें होताहै; सर्व सावद्य जोगों को सर्वथा प्रकार त्यागनें सें सर्व व्रत संवर होके सर्वथा प्रकार अव्रतके पाप नहिं लगते हैं,

अवल में सामायक चारित्र आदरते हैं उनके मोहकर्म उदय रह नेसें जो कर्तव्य करें जिससें पाप कर्म लगतेहैं और मोह कर्मका उदय भला ध्यान भली लेश्यासें घटावें अर्थात् कमकरै तब उद्-यीक कर्तव्य भी हलके होते हैं, तब पाप भी हलके लगते है, मोह कर्म को उपसमानें सें उपस्म चारित्र और क्षय करनेंसें क्षाय-क चारित्र निपजता है तब किञ्चित् भी पाप नहिं लगता हैं अब: जीव निरमल शीतली भूत होजाता है, तात्पर सामायक चारित्र उदीर कर लेते हैं जिससें सर्व सावद्य जोगों को त्याग करते हैं और उपस्म तथा क्षायक चारित्र पचखने सें नहीं आता है, उप-स्म चारित्र तो सम्पूर्ण मोह कर्म को उपसमानें सें और क्षायक चारित्र शुक्ल ध्यान ध्यानें सें सम्पूर्ण मोह कर्म को क्षय करै तब यथाख्यात चारित्र आता है सो बारवें तेरवें चौदशवें गुणस्थान है, और उपस्म चारित्र सिर्फ इग्यार में गुणस्थान ही है; चारित्र जीव का निजगुन है सो मोह कर्म अलग होनें सें प्रगट होता है चारित्र के गुनों सें जीव मुनिराज हुआ है इस गुन के प्रगट हो-नेसें अनुक्रम सर्व कर्मों सें मुक्ति होजाता है, श्रीजिनेश्वर देवनें चारित्र को जीव का निजगुन कहा है सो जीव सें अलग नहीं हैं अर्थात् जीव के गुन है सो जीव है।

॥ ढाल तेहिज ॥

चारित्रावरणी तो मोहणी कर्म छै। तिणरा छैं अनन्त प्रदेश हो ॥ भ ॥ तिणरा उदासूं निज गुन विगडिया। तिणसुं जीवनें अत्यंत क्लेशहो ॥ ॥ भ ॥ चं ॥ २८ ॥ तिण कर्मरा अनन्त प्रदेश अलगा हुवां। जब अनन्त गुण उज्वल थायहो ॥ भ ॥ जब सावद्य जोग पचख्यां छै सर्वथा।

ते सर्व व्रत संबर ताय हो ॥ भ ॥ सं ॥ २६ ॥ जीव ऊजलो हुयो ते हुई निरजरा । ते व्रत संबर सूं रुकिया पाप कर्म हो ॥ भ ॥ नवा पाप न लागैं व्रत संबर थकी । एहवो छै चारित्र धर्म हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३० जिम जिम मोहनीय कर्म पतलो पडै । तिम तिम जीव उज्वल थाय हो ॥भ॥ इम करतां मोहनीय कर्म खय हुवै सर्वथा । जब यथाख्यात चारित्र हो जाय हो ॥भ॥ सं ॥ ३१ ॥ जघन्य सामायिक चरित्र तेहनां । अनन्त गुण पजवा जांण हो ॥ भ ॥ अनन्त कर्म प्रदेश उदै था सो मिटगया । तिण सूं अनन्त गुण प्रगट्या आंण हो ॥ भ ॥ ३२ ॥ जघन्य सामायिक चारित्रया तणां । अनन्त गुण उज्वल प्रदेश हो ॥ भ ॥ वलि अनन्त प्रदेश उदय था ते मिटगया । जब अनन्त गुण ऊजलो विशेष हो ॥ भ ॥३३॥ मोह कर्म घटैछै उदाथी इणविधै । तेतों घटैछै असंखेज वार हो ॥भ॥ तिणसूं सामायिक चारित्ररा कह्या । असंख्याता थानक श्रीकारहो ॥भ॥३४॥ अनन्त कर्म प्रदेश उदय था ते मिटगआ । जब चारित्र थानक नीपजै येक हो ॥भ॥ चारित्र गुण पजवा अनन्ता

नीपजै । सामायिक चारित्ररा भेद अनेक हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३५ ॥ जघन्य सामायिक चारित्र तेहनां । पजवा अनन्ता जांण हो ॥ भ ॥ तिण थी उत्कृष्टा सामायिक चारित्र तणां । पजवा अनन्त गुणां वखाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३६ ॥ पजवा उत्कृष्टा सामायिक चारित तणां । तिण थीं सूक्षम संपरायरा विशेख हो ॥ भ ॥ अनन्त गुण कह्या छै जघन्य चारित्र तणां । सूक्षम संपराय त्यों पेख हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३७ ॥ छट्टा गुण ठाणा थकीं नवमां लगै । सामायिक चारित्र जांण हो ॥ भ ॥ असंख्याता थानक पजवा अनन्त छै । सूक्षम संपराय दशमें गुण ठाण हो ॥ भ ॥ सं ॥३८॥ सूक्षम संपराय चारित तेहनां । थानक असंखेज जांण हो ॥ भ ॥ इक इक थानकरा पजवा अनन्त छै । सामायक चारित ज्युं लीज्यो पिछाण हो ॥ भ ॥ सं ॥ ३९ ॥ सूक्षम चारित्रयारे शेष उदय रह्या । मोह कर्मरा अनन्ता प्रदेशहो ॥ भ ॥ ते अनन्ता प्रदेश खिरयां निरजरा हुई । वाकी उदय नहीं रह्यो लव लेश हो ॥ भ ॥ सं ॥ ४० ॥ जब यथाख्यात चारित प्रगट हुवो । तिण चारित्ररा

पजवा अनन्त हो ॥ भ ॥ सूक्षम सम्परायरा उत्कृ-
ष्टा पजवा थकी । अनन्त गुणां कह्या भगवंतहो
॥ भ ॥ सं ॥ १४ ॥ यथा ख्यात चारित्र ऊजलो
हूवो सर्वथा । तिण चारित्र रो थानक येकहो ॥
भ ॥ अनन्ता पजवा छै तिण थानक तणां । ते
थानक छै उत्कृष्टो विसेखहो ॥भ॥ ३४ ॥ मोहकर्म
प्रदेश अनन्ता उदय हूवा । तेतो पुद्गलरी पर्याय
हो ॥ भ ॥ ते अनन्ता अलगा हूवां अनन्ता गुण
प्रगटै । ते निजगुण जीवरा छै रहायहो ॥ भ ॥ सं
॥ ४४ ॥ ते निजगुण जीवरा भाव जीवछै । ते निज
गुण छै बंदनीक हो ॥ भ ॥ तेतो कर्म खय हूवां सुनि\
पनां । भाव जीव कह्या त्यांनैं ठीक हो ॥ भ ॥
॥ सं ४५ ॥

॥ भावार्थ ॥

चारित्रावरणी अर्थात् चारित्र गुनके आडा आवरण सो चारित्रावरण जो मोहनीय कर्म है जिसके अनन्ते प्रदेश जीवके उदयहोने से चारित्र मयी निज गुन खराव होरहा है जिससें जीवको अत्यन्त क्लेश है इसके अलग होनेसें चारित्र गुन अनन्तगुणां उज्वल होता है, सर्वथा प्रकार सावद्य जोगों को प्रत्याख्यान प्रज्ञा सें पचखनें सें सर्वव्रत निपजता है, संयमी होनेसें जीव उज्वल हूवा सो तो निरजरा है, और संवर सें नवीन पाप कर्म नहीं लगें सो सर्वव्रत चारित्र, ज्यों ज्यों मोहनीय कर्म हलका अर्थात् कम

होगा त्यों त्यों जीव उज्वल होके चारित्र गुनकी वृद्धी करेगा, ऐसें मोहनीय कर्मको क्षय करते करते सर्व मोह कर्म क्षय होजा वेसे यथाख्यात चारित्र होता है ॥ जिस जीवके कर्म थोडे होते हैं उसें बैराग्य भाव उत्पन्न होता है तब संसार को असार जानके प्रथम सामाइक चारित्र आदरता है अर्थात् पंच महाव्रत अङ्गीकार करिके भले अध्यवसायो सें मोहनीय कर्म के प्रदेशा को क्षय करता है तब येक संयम स्थानक निपजता है अनन्त प्रदेशों का क्षय होने सें अनन्त गुणां उज्वल चारित्र हुवा इससें येक संयम स्थानक की अनन्ति पर्याय है, इसही तरहें मोहनीय कर्म को असंख्यात बार क्षय करता है इसलिये सामाइक चारित्र के असंख्याता संयम स्थानक हैं और येक येक संयम स्थानक की अनन्ती अनन्ती पर्याय है, जघन्य सामायक चारित्र की पर्याय सें उत्कृष्ट सामायक चारित्र की पर्याय अनन्त गुण अधिक है छट्टा गुणस्थान सें नवमा गुणस्थान लग सामायक चारित्र है ऐसें छेदोस्थापनी चारित्र के स्थानक और पर्याय जानना, दसमें गुणस्थान सूक्ष्म सम्पराय चारित्र है जिसके भी असंख्याता संयम स्थानक और अनन्ती पर्याय है, सूक्ष्म सम्पराय चारित्रियाके मोहनीय कर्मके अनन्ते प्रदेश सेष रहे हुवे सर्व प्रदेश आतम प्रदेशों सें येक दम अलग होता है तब द्वादशम गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है, मोहनीय कर्मके सर्व प्रदेशों को येक ही वक्त में क्षय किया इस लिये यथाख्यात चारित्र का येकही संयम स्थानक है और उसकी सबसें अधिक अनन्ती पर्याय है, सामाइक छेदो स्थापनीय पडिहारविशुद्ध और सूक्ष्म संपराय इन च्यार चारित्रोंके तो असंख्याता असंख्याता संयम स्थानक है अर्थात् इन चारित्र वालोंने मोहनीय कर्मके प्रदेशों को पूर्वोक्त रीति सें असंख्याता २ वारखपाते हैं जिससे चारित्र गुण अधिकाधिक अनन्त गुणां निरमल होता है सोही अनन्ती पर्याय है, सबसें थोडीतो सामाइक छेदोस्थापनीय चारित्र की जघन्य पर्याय (पजभव) है, जिससें अधिक पडिहार विशुद्ध चारित्रकी जघन्य पर्याय अनन्त गुणीं है, जिससें अधिक पडिहार विशुद्ध चारित्र का उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणीं है जिससें अधिक सामाइक और छेदोस्थापनीय

चारित्र की उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणी है; जिससें अधिक सूक्ष्म संपराय चारित्र की जघन्य पर्याय अनन्त गुणीं है; जिससें अधिक सूक्ष्म संपराय चारित्र की उत्कृष्टी पर्याय अनन्त गुणीं है, जिससें अधिक यथाख्यात चारित्र की पर्याय अनन्त गुणीहै, तात्पर सबसें जियादह यथाख्यात चारित्र निर्मला है ये चारित्र बारवें तेरवें गुणस्थान है।

॥ ढाल तेहिज ॥

सावद्य जोगरा त्याग करिनैं रूंधीया। तिण सुं ब्रतसंबर हूवो जाण हो ॥ भ ॥ निरवद्य जोग रूंध्यां संबर हूऔ। तिणरी बुद्धिवंत करिजो पिछाणहो ॥ भ ॥ ४६ ॥ निरवद्य जोग मनवचन कायां तणां। ते घटिया थीं संबर थायहो ॥ ॥ भ ॥ सर्वथा घटियां अजोग संबर हूऔ। तिणरो न्योरो सुणो चितल्याय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ४७ ॥ साधुतो उपवास बेलादिक तप करै। ते कर्मकाटणरे कांमहो ॥ भ ॥ जब सहचर संबर साधुरे नींपजै। निरवद्य जोग रूंध्यां सु तांमहो ॥ भ ॥ ॥ सं ॥ ४८ ॥ श्रावक उपवास बेलादिक तपकरै। ते पिण कर्म काटणरै कांमहो ॥ भ ॥ जब ब्रतसंबर पिण सहचर नींपजै। सावद्य जोग रूंध्यां तांम हो ॥ भ ॥ सं ॥ ४६ ॥ श्रावक जेजे पुदगल भोगवै। ते सावद्य जोग व्यापार हो ॥

॥ भ ॥ थांरो त्याग कियांथी ब्रत संवर हूवे । तप पिण नीपजै लारहो ॥ भ ॥ सं ॥५०॥ साधु तो कल्पै ते पुदगल भोगवै । ते निरवद्य जोग व्यापार हो ॥ भ ॥ त्यांनें त्याग्यां थी तपस्या नींपनी । जोग रूंध्या ते संवर श्रीकार हो ॥भ॥ ५१ ॥ साधू रो हालवो चालवो बोलवो । ते निरवद्य जोग व्यापार हो ॥ भ ॥ निरवद्य जोग रूंध्या जितलो ही संवर हूवे । तपस्या पिण नीपजै श्रीकार हो ॥ ॥ भ ॥ सं ५२ ॥ श्रावक रो हालवो चालवो बोलवो । ते सावद्य निरवद्य व्यापार हो ॥ भ ॥ सावद्यरा त्याग सुं तो ब्रत संवर हूऔ । निरवद्य त्याग्यां संबर श्रीकार हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५३ ॥ चारित नैं तो ब्रत संवर कह्यो । ते तो अब्रत त्याग्यां होय हो ॥भ॥ अजोग संवर शुभ जोग रूंध्यां हूवे । तिण में शंका नांहिं कोय हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५४ ॥ संवर निज गुण निश्चय जीवरो । तिणनैं भावजीव कह्यो जगनाथ हो ॥ भ ॥ जिण द्रव्य नें भाव जीव नांहिं ओलख्यो । तिणरा घट में सुं न गयो मिथ्यात हो ॥ भ ॥ सं ॥ ५५ ॥ संबर पदारथ नैं ओलखायवा । जोड कीधी श्रीजी द्वारा मझार

हो ॥ भ ॥ सम्वत् अठारे नें छपना वर्ष में । फाग ण विद तेरश शुक्रावारहो ॥भ॥ सं ॥ ५६ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सावद्य जोग वर्त्तने के त्याग करके सावद्य जोगों को रूंधने से व्रत संवर होय, और निरवद्य जोग देशतः रूंधनें सें संवर और सर्व रूंधनें से अजोग संवर होता है। साधु मुनिराज आहार पानी आदि कल्पनीय द्रव्य भोगते हैं सो निरवद्य जोग हैं तथा श्रावक भोगता है सो सावद्य जोग हैं, इसलिये श्रावक उपवास वेला आदि तपकरैं जिस में आहार पानी भोगने का त्याग किया जिससें सहचर व्रत संवर होता है, और साधू आहार पानी आदि भोगने का त्याग करैं तब उनके भी संवर होता है, जब कोई कहे साधू आहार पानी करैं जिससें पाप नहीं लगै तो फिर संवर किसतरहें हुआ जिसका उत्तर यह है कि पाप श्रवै सोही आश्रव नहीं हैं आश्रव तो पुण्य को भी श्रवता अर्थात् ग्रहण करता है और पाप को ग्रहण करता है इसलिये साधू आहार पानी भोगनें के शुभ जोगों को रूंधनें सें पुण्य कर्मके आने के द्वार को रूंध्या सो संवर हुआ और श्रावक पाप कर्म के आनें के द्वार जो आहार पानी भोगनेंके अशुभ जोग द्वार रूंध्या जिससें संवर हुआ तात्पर श्रावक का हालना चलना बोलना खाना पीना आदि कर्तव्य है सो सावद्य जोग व्यापार और साधू के येही कर्तव्य निरवद्य जोग व्यापार है. श्रावक के सावद्य को त्यागनें सें व्रत संवर और निरवद्य के त्यागनें सें संवर होता है. चारित्र है सो व्रत संवर है सो अव्रत को त्यागने सें होता है और अजोग संवर सर्व निरवद्य जोगों को रूंधे तब होता है। संवर है सो जीवका निजगुन है भाव जीव है सोही स्थिर प्रदेश है। छट्ठा संवर पदारथ को ओलखाने के निमित्त स्वामी श्री भीखनजीनें श्री नाथद्वारा में सम्वत् १८५६ फाल्गुन सुदी १३ शुक्रवार को जोड किया जिसका भावा-

थे निजबुद्धयानुसार मैंने किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ आया हो उसका मुझे बारम्बार मिच्छामि दुक्कडं है।

आपका हितेच्छू

श्रा० गुलाबचन्द लूणियां जयपुर

॥ अथ सातमां निरजरा पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

निरजरा पदार्थ सातमूं। ते तो उज्वल वस्तु अनूप ॥ ते निजगुन जीव चेतन तणों। ते सुणज्यो धर चूंप।

॥ ढाल ॥

भिन २ जम्बू स्वाम नें ॥ एदेशी ॥

आठ कर्म छै जीवरै अनादिरा। त्यां री उत्पत्ति आश्रव द्वार हो मुणिंद। ते उदय थयां नें पछै निरजरै। वलि उपजै निरंतर लार हो मुणिंद ॥ निरजरा पदार्थ ओलखो ॥ १ ॥ द्रव्य जीव छै तेहनां। असंख्याता प्रदेश हो ॥ मु ॥ सारा प्रदेशां आश्रव द्वार छै। सारा प्रदेशां कर्म प्रवेश हो ॥ मु ॥ नि ॥ २ ॥ इक इक प्रदेश छै तेहनें।

समें समें कर्म लागंत हो ॥मु॥ प्रदेश येक येक कर्म नां। समें समें लागे छै अनन्त हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३ ॥ कर्म उदय थी जीवरै । समें समें अनन्त झडजाय हो ॥ मु ॥ भरी नींगल ज्यूं कर्म मिटै नहीं । कर्म मिटवा रो न जाणों उपाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४ ॥ आठ कर्मां में च्यार घनघातिया । त्यांसुं चेतन गुणा-री हुवै घात हो ॥ मु ॥ ते असमात्र क्षयोपसम रहै सदा । तिणसूं जीव ऊजलो रहै असमात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५ ॥ कांयिक घनघातिया क्ष-योपसम हुअै ॥ जब कांयिक उदें रह्या लार हो ॥ मु ॥ क्षयोपसम थी ऊजलो हुवै । उदें थी ऊज-लो न हुवै लिगार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६ ॥ कांयक कर्म क्षय हुवें । कांयक उपसम हुवें ताय हो ॥ मु ॥ ये क्षयोपसम हुयां जीव ऊजलो । ते चेतन गुन पर्याय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ७ ॥ जिम जिम कर्म क्षयोपसम हुअै । तिम तिम जीव ऊजलो हुअै आंम हो ॥ मु ॥ जीव ऊजलो हुओ ते निरजरा । ते भाव जीव छै तांम हो ॥ मु ॥ नि ॥ ८ ॥ देश थकी जीव ऊजलो हुवै । तिण

नैं निरजरा कही भगवान हो ॥ मु ॥ सर्व ऊजलो ते मोक्ष छै । तै मोक्ष छै परम निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ९ ॥ ज्ञानावरणी क्षयोपसम हुवां नींपजै । च्यार ज्ञाननें तीन अज्ञान हो ॥मु॥ भणवो आचारंग आदि दे । चवदे पूर्वरो ज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १० ॥ ज्ञानावरणी री पांच प्रकृती मझें । दोय क्षयोपसम रहै सदीव हो ॥ मु ॥ तिणसूं दोय अज्ञान रहै सदा । असमात्र ऊजलो रहै जीव हो ॥ मु ॥ नि ॥ १० ॥ मिथ्याती रै तो जघन्य दोय अज्ञान छै । उत्कृष्टा तीन अज्ञान हो ॥ मु ॥ देश ऊंणों दश पूर्व भणौं । इतलो उत्कृष्टो क्षयोपसम अज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १२ ॥ समदृष्टी रै जघन्य दोय ज्ञान छै । उत्कृष्टा च्यार ज्ञान हो ॥ मु ॥ चवदह पूर्व उत्कृष्टौ भणौं । एहवो क्षयोपसम भाव निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १३ ॥ मति ज्ञानावरणी क्षयोपसम हुवां । निपजै मति ज्ञान नें मति अज्ञान हो ॥ मु ॥ श्रुत ज्ञानावरणी क्षयोपसम हुवां । निपजै श्रुत ज्ञान नें श्रुत अज्ञान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १४ ॥ भणौं आचाराङ्ग आदिदे । समदृष्टी चवदह पूर्व नांण हो

॥ मु ॥ मिथ्याती उत्कृष्टो भणों । देश ऊंणो दश पूर्व लग जांण हो ॥ मु ॥ नि ॥ १५ ॥ अवधि ज्ञानावरणी क्षयोपसम हुवां । समदृष्टी पामें अव-धि नांण हो ॥ मु ॥ मिथ्या दृष्टी नें विभङ्ग अ-ज्ञान ऊपजे । क्षयोपसम प्रमाणें जांण हो ॥ मु ॥ नि ॥ १६ ॥ मन पर्यायावरणी क्षयोपसम हुवां । उपजें मनपर्याय ज्ञान हो ॥ मु ॥ ते साधुसम दृष्टी नें ऊपजे । एहवो क्षयोपसम भाव प्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ १७ ॥ ज्ञान अज्ञान सागार उपयोग छै । यां दोन्यारो येक स्वभाव हो ॥ मु ॥ ते कर्म अलगा हुवां नींपजे । ते क्षयोपसम ऊजलो भाव हो ॥ मु ॥ नि ॥ १८ ॥ दरशनावरणी क्षयोप-सम हुवां । आठ बोल नीपजें श्रीकार हो ॥मु॥ पांच इन्द्रियां नें तीन दरशन हुवें । ते निरजरा उज्वल तंतसार हो ॥ मु ॥ नि ॥ १९ ॥ दरश-नावरणी री नव प्रकृती मझे । येक प्रकृती क्षयो-पसम सदीव हो ॥ मु ॥ तिण सूं अचक्षु दरशन नें स्पर्श इन्द्री रहै सदा । ते क्षयोपसम भाव छै जीव हो ॥ मु ॥ नि ॥ २० ॥ चक्षु दरशनावर-णी क्षयोपसम हुवां । चक्षु इन्द्री नें चक्षु दरशन

होय हो ॥ मु ॥ कर्म अलगा हुवां ऊजलो हुवै जब देखवा लागै सोय हो ॥ मु ॥ नि ॥ २१ ॥ अचक्षु दरशनावरणी विशेष थी । क्षयोपस्म हुवै तिणवार हो ॥ मु ॥ चक्षु टाली नें शेष इन्द्रियां । क्षयोपस्म इन्द्रियां पामैं च्यार हो ॥ मु ॥ नि ॥ २२ ॥ अवधि दरशनावरणी क्षयोपस्म हुवां । उपजै अवधिदरशन विशेष हो ॥ मु ॥ जब उत्कृष्टो जीव देखै एतलो । सर्वरूपी पुद्गल ले देख हो ॥ मु ॥ नि ॥ २३ ॥ पांच इन्द्री नें तीन दरशन ते क्षयोपस्म उपयोग मणागार हो ॥ मु ॥ ते वानगी केवल दरशण मांहिली । तिणमें शङ्का मतराखो लिगार हो ॥ मु ॥ नि ॥ २४ ॥ मोहनीय कर्म क्षयोपस्म हुवां । नींपजै आठ बोल अमांम हो ॥ मु ॥ च्यार चारित्र नें देश व्रत नींपजै । तीन दृष्टी उज्वल हुअै तांम हो ॥ मु ॥ नि ॥ २५ ॥ चारित्र मोहनीयरी पच्चीस प्रकृती मझै केई सदा रहै क्षयोपस्म हाय हो ॥ मु ॥ तिण सूं अंसमात्र ऊजलो रहै । जब भला वर्तै अध्यवसाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ २६ ॥ कदे क्षयोपस्म अधिको हुवै । जब आधिका गुण हुवै तिण

मांय हो ॥ मु ॥ क्षमां दया संतोषादिक गुण बधै भली लेश्यादिक वर्तै जब आय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ २७ ॥ भला परिणाम पिण वर्तै तेहनां । भला जोग पिण वर्तै ताय हो ॥ मु ॥ धर्म ध्यान पिण ध्यावै किण समें । ध्यावणी आवै मिटियां कषाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ २८ ॥ ध्यान परिणाम जोग लेश्या भला । भला वर्तै छै अध्यवसाय हो ॥ मु ॥ साश वर्तै अंतराय रो क्षयोपस्म हुवां । मोह कर्म अलगो हुवां त्हाय हो ॥मु॥नि॥२९॥

॥ भावार्थ ॥

अब सातमां निरजरा पदार्थ कहते हैं निरजरा अर्थात् निरमला या ऊजला जीव सो निरजरा जीवका निजगुन है, अनादिकाल सें जीव अशुभ कर्म मयी मैल सें मैला हो रहा है आठ कर्मों का सङ्गी जीव अनादि काल सें हैं जिन्ह कर्मों की उत्पत आश्रव द्वार है, जीवके असंख्याता प्रदेश है सो सर्व प्रदेश आश्रव द्वार है जीवके येक येक प्रदेश पर कर्मके अनन्तानन्त प्रदेश लगते हैं वे उदय होके समय समय अनन्तेही अलग होते हैं उनके अलग होनेसें जीव ऊजला होय उसें भी निरजरा ही कहते हैं परंतु फिर नवीन कर्म खोटी करणी करणे सें लगते रहते हैं, आठ कर्म में च्यार कर्म घण घातीक हैं जिससें जीवके निजगुनों की घात हो रही है लेकिन घातिक कर्मों का भी किंचित् क्षयोपस्म सदा रहता है इसलिये जीवके निजगुन भी हमेशां ऊजले रहते हैं, जितने जितने घातिक कर्मों का क्षयोपस्म होता है उतनां उतना ही जीव देशतें उज्वल होता जाता है, जीव उज्वल होय उस हीं

का नांम निरजरा है सर्व तें उज्वल होय उसका नांम मोक्ष है, अत्र ज्ञानावरणीयादि च्यार घातीक कर्मों का क्षयोपसम होने सें जोव के गुन प्रगट होते हैं जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक कहते हैं।

१-ज्ञानावर्णीय कर्म क्षयोपसम होने सें केवल विना च्यार ज्ञान तीन अज्ञान तथा भणना गुणनां यह आठ बोल प्राप्त होते हैं, ज्ञानावर्णीय कर्म की पांच प्रकृती में सें मति और श्रुत ज्ञानावरणी तो किंचित् सास्वती जीवके क्षयोपसम रहती है जिस सें समदृष्टी के तो मति श्रुति ज्ञान और मिथ्यात्वी के मति श्रुति अज्ञान जघन्य में है तथा वाकी प्रकृतियों का क्षयोपसम जितना जितना अधिक होय उतना उतनां ही ज्ञान गुण अधिक प्रगट होता जाता है, मित्थ्याती के तो जघन्य दोय और उत्कृष्टा तीन अज्ञान होता है, और समदृष्टी के ज्ञानावर्णीय कर्म क्षयोपसम होनेसें जघन्य दोय ज्ञान और उत्कृष्टा च्यार ज्ञान होता है, तथा मिथ्याती तो जघन्य आठ प्रवचन माता का भणता है और उत्कृष्टा देश ऊंणा दश पूर्व भण जाता है, समदृष्टी जघन्य आठ प्रवचन माता का और उत्कृष्टा चौदह पूर्व भण जाता है, अवधि ज्ञानावरणीय क्षयोपसम होने सें समदृष्टी के तो अवधि ज्ञान और मित्थ्या दृष्टी के विभङ्ग अज्ञान होता है मन पर्यव ज्ञानावरणी का क्षयोपसम मित्थ्यात्वी के कदापि नहीं होता है इस प्रकृती का क्षयोपसम तो समदृष्टी साधू के ही होता है जिससें मन पर्यव ज्ञान प्रगट होता है, केवल ज्ञानावरणी का क्षयोपसम होता नहीं इसका तो क्षायक ही होता है, तात्पर्य ज्ञान अज्ञान दोनूं हीं क्षयोपसम भाव है सो जीव के निजगुन हैं दोनूं हीं का गुन यथार्थ जाननें का है विपरीत जांने सो मित्थ्यात है, तब कोई कहै तो फिर इस गुनको अज्ञान क्या कहा इसका उत्तर यह है कि जैसें कुवेका पानी तो शुद्ध निरमल ठण्डा और मीठा है परंतु वोही पानी ब्रह्मन के वरतन में रहनें सें शुद्ध गिना जाता है और वोही पानी मातङ्ग के वरतन में रहैं तब अशुद्ध गिनते हैं वैसें हीं मित्थ्याती के ज्ञान गुन प्रगट हुवा सो मिथ्यात सहित है इसलिये उसें अ-

ज्ञान और समदृष्टी के ज्ञान कहा जाता है, ज्ञान अज्ञान दोनूं ही साकार उपयोग हैं।

२-दूसरा घातीक कर्म दरशनावरणीय है जिसकी ९ प्रकृती हैं जिसमें से अचक्षु दरशनावरणी देशतें हमेशां क्षयोपस्म रहती है जिससें अचक्षु दरशन और स्पर्श इन्द्री तो जीवके हमेशांही है बाकी जैसी जैसी प्रकृती का क्षयोपस्म होय वैसा वैसा ही गुन जीवके प्रगट होता जाता है, चक्षु दरशना वरणी का क्षयोपस्म होने से चक्षु इन्द्री और चक्षु दरशन गुन होता है, अचक्षु दरशनावरणी का विशेष क्षयोपस्म होनेसें अचक्षु दरशन और श्रुत घ्राण रश स्पर्श येह च्यार इन्द्रियां होती हैं, अवधि दरशनावरणी का क्षयोपस्म होनेसें अवधि दरशन उत्पन्न होता है, तात्पर्य पांच इन्द्रियां और तीन दरशन यह आठ गुन दरशनावरणीय कर्म का क्षयोपस्म होने से होते हैं सो केवल दरशनकी धानगी है, पांच इन्द्रियां और तीन दरशन येह जीवके मणागार उपयोग गुन हैं।

३-तीसरा घातिक कर्म मोहनीय है जिसका क्षयोपस्म होने से जीवके आठ गुन प्रगट होते हैं, मोहनीय कर्म के दोय भेद है चारित्र मोहनीय और समकित मोहनीय चारित्र मोहनीय की पच्चीस और समकित मोहनीय की तीन प्रकृती हैं जिसमें से चारित्र मोहनीय की प्रकृतियां किंचित् हमेशां क्षयोपस्म रहती है जिससे शुभ जोग और भले अध्यवसाय जीवके वर्तते हैं तथा धर्म ध्यान भी ध्याता है परंतु कषाय मिटणे से धर्म ध्यान ध्याया जाता है, ध्यान परिणाम जोग लेश्यां अध्यवसाय येह सर्व भले वर्तें सो अंतराय कर्म का क्षयोपस्म होने से तथा मोहकर्म का उदय अलग होने से वर्तते हैं, अब मोहनीय कर्म का क्षयोपस्म होने से जीव आठ बोल पाता है सो कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

चौकडी अनन्तानु बंधी आदि दे । घणी प्रकृतियां क्षयोपस्म हुवां ताय हो ॥ मु ॥ जब जीवरै देश ब्रत नींपजे । इण हिज विध च्यारों चारित आय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३० ॥ मोहनीय क्षयोपस्म हुवां नीपजै । देश ब्रत नें चारित च्यार हो ॥ मु ॥ वलि क्षमां दयादिक गुण नींपजै । येह सघला ही गुण श्रीकार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ३१ ॥ देश ब्रत नें च्यारूं चारित्र भला । ते गुण रतनां री खान हो ॥ मु ॥ ते क्षायक चारित्र री वानगी । यहवो क्षयोपस्म भाव प्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३२ ॥ चारित्र नें ब्रत संबर कह्यो । तिण सूं पाप रूंधै छै ताय हो ॥ मु ॥ ते पाप झडनें ऊजलो हुवै । तिणनें निरजरा कहि इणन्याय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३३ ॥ दर्शन मोहणी क्षयोपस्म हुवां । निपजे सांची शुद्ध श्रद्धान हो ॥ मु ॥ तीन दृष्टी में शुद्ध श्रद्धान छे । यहवो क्षयोपस्म भाव निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३४ ॥ मिथ्यात मोहणी क्षयोपस्म हुवां । मिथ्यादृष्ट उज्वल होय हो ॥मु॥ जब केइक पदार्थ शुद्ध श्रद्धले । यहवो

गुण नींपजै छै सोय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३५ ॥
मिश्र मोहणी क्षयोपस्म हुवां । सम मिथ्या दृष्ट
उज्वल हुवै तांम हो ॥ मु ॥ जब घणां पदार्थ
शुद्ध श्रद्धले । यहवो गुण नीपजै छै आंम हो ॥
मु ॥ नि ॥ ३६ ॥ समकित मोहणी क्षयोपस्म
हुवां । नींपजै समकित रतन प्रधान हो ॥ मु ॥
नव ही पदार्थ शुद्ध श्रद्धले । यहवो क्षयोपस्म
भाव निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३७ ॥ मिथ्यात
मोहनीय उदय रहै जिहां लगै । समां मिथ्या
दिष्ट नहीं आवंत हो ॥ मु ॥ मिश्र मोहनी रा उ-
दाथकी । समकित नहीं पावंत हो ॥मु॥ नि ॥
॥ ३८ ॥ समकित मोहनीय जिहांलग उदय रहैं ।
त्यांलग क्षायक समकित आवै नांहि हो ॥ मु ॥
एहवीं छाक छै मोहनीय कर्मनीं । नांखै जीवनें
भ्रम जाल मांहि हो ॥ मु ॥ नि ॥ ३९ तीनूं हीं
दृष्ट क्षयोपस्म भाव छै । ते सगलाही शुद्ध श्रद्धा-
न हो ॥ मु ॥ ते खायक सम्यक्त मांहिली । वान-
गी मात्र गुण निधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४० ॥
अंतराय कर्म क्षयोपस्म हुवां । आठ गुण नींपजै
श्रीकार हो ॥ मु ॥ पांच लब्धिनें तीन वीर्य

नीपजै । हिवे तेहनुं सुणो विस्तार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ४१ ॥ दाना अंतराय क्षयोपस्म हुवां । दान देवारी लब्धि उपजंत हो ॥ मु ॥ लाभा अंतराय क्षयोपस्म हुवां । लाभरी लब्धि खुलंत हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४२ ॥ भोगा अंतराय क्षयोपस्म हुवां । भोगरी लब्धि उपजै ताय हो ॥ मु ॥ उपभोगा अंतराय क्षयोपस्म हुवां । उपभोग लब्धि उपजै आय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४३ ॥ वीर्य अंतराय क्षयोपस्म हुवां । वीर्य लब्धि उपजै छै त्हाय हो ॥ मु ॥ वीर्य लब्धि ते सक्ति छै जीवरी । उत्कृष्टी अनन्ती होय जाय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४४ ॥ यह पांचूं ही प्रकृती अंतरायनीं । सदा क्षयोपस्म रहै छै साक्षात हो ॥ मु ॥ तिणसूं पांचूं लब्धि नें बाल वीर्य । ते उज्वल रहै छै अल्प मात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४५ ॥ दान देवारी लब्धि निरंतर रहै । दान देवै ते जोग व्यापार हो ॥ मु ॥ लाभनीं लब्धि निरंतर रहै । वस्तु लाभै ते किण वार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४६ ॥ भोग लब्धि तो रहै छै नि-रंतरे । भोग भोगवै ते जोग व्यापार हो ॥ मु ॥ उपभोग पिण लब्धि छै निरंतरे । उपभोग भोगवे

जिणवार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४७ ॥ वीर्य लब्धि तो निरंतर रहै । चवदमां गुणठाणा लग जांण हो ॥ मु ॥ बारमां ताई तो क्षयोपसम भाव छै । खायक तेरमैं चोदमैं गुणठांण हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ४८ ॥ अंतराय रो क्षयोपसम हुवां जीवरै । पुन्य सारू मिलसी भोग उपभोग हो ॥ मु ॥ साधु पुद्गल भोगवै ते शुभ जोग छै । और भोगवै ते अशुभ जोग हो ॥ मु ॥ नि ॥ ४९ ॥

॥ भावार्थ ॥

अनन्तानु बंधिया क्रोध आदि घणी प्रकृतियां मोहनीय कर्म को क्षयोपसम होय तब जीवके देश व्रत गुण निपजता है; इसही तरहें घणी प्रकृतियां का क्षयोपसम होने से सामायक आदि च्यारों चारित्रों को जीव पाता है, क्षमा दया निरलोभता आदि अनेक गुण भी मोहनीय कर्म क्षयोपसम होने से होते हैं, देशव्रत तथा च्यार चारित्र हैं सो क्षयोपसम भाव है क्षायक चारित्र की बानगी है तथा चारित्र है सो व्रत संवर है परंतु चारित्र की क्रया हैं सो शुभ जोगों से होती है जिससे कर्म कटते हैं जीव उजलो होता है तथा क्षयोपसम भाव से भी जीव उज्वल होता है इसलिये इनका वर्णन निरजरा पदार्थ में भी बताया है; दरशन मोहनीय क्षयोपसम होने से शुद्ध श्रद्धामयी गुण निपजता है, तीन दृष्ट क्षयोपसम भाव है, शुद्ध श्रद्धा ही को दृष्ट कहते हैं किन्तु अशुद्ध श्रद्धा को दृष्ट नहीं कहते, अशुद्ध श्रद्धा है सो तो मिथ्यात्व है परंतु दृष्ट नहीं हैं, मिथ्यात मोहनीय क्षयोपसम होने से मिथ्या दृष्ट उज्वल होती है जिससे कितने ही पदार्थों को शुद्ध श्रद्धता है, समामिथ्या मोहनीय क्षयोपसम होने से समामिथ्यादृष्ट उज्वल

होती है तब बहोत पदार्थों को जीव शुद्ध श्रद्धता है, और समकित मोहनीय क्षयोपसम होने सें समदृष्ट उज्वल होती है जब जीव नवही पदार्थों को यथार्थ श्रद्धता है शुद्ध श्रद्धान हैं सोही सम्यक्त्व है, मित्थ्यात्व मोहनीय का उदय जहां लगि हैं तहां लगि समिथ्यादृष्ट नहीं पाता, और समभित्थ्या मोहनीय का उदय है जहां तक समदृष्ट नहीं पाता हैं; समकित मोहनीय का उदय जहांतक जीवके रहता है तहां तक जीव क्षायक सम्यक्त्व नहीं पाता है, तात्पर्य तानूं हीं दृष्ट है सो क्षयोपसम भाव है, क्षायक सम्यक्त्व की वानगी है. मोहनीय कर्म का क्षयोपसम होने सें जीव उज्वल होता है सो क्षयोपसम भाव है अर्थात् जीव निरमला हुवा सोही निरजरा है जिससें जीवके आठ बोलों की प्राप्ति होती है-सामायक आदि च्यार चारित्र, देशव्रत, और तीन दृष्ट चौथा घातिक कर्म अंतराय है जिसका क्षयोपसम होने सें जीवके आठ बोलों की प्राप्ति होती है-पांच लब्धि और तीन वीर्य जिसका वर्णन कहते हैं ।

१-दाना अंतराय का क्षयोपसम होने सें दान देनें की लब्धि उपजती है ।

२-लाभा अंतराय का क्षयोपसम होनेसें लाभ लें की अर्थात् वस्तु पानें की लब्धि उपजती है ।

३-भोगा अंतराय का क्षयोपसम होनेसें भोग भोगनें की लब्धि उपजती है ।

४-उपभोगा अंतराय का क्षयोपसम होनेसें उपभोग भोगने की लब्धि उपजती है ।

५-वीर्य अंतराय का क्षयोपसम होनेसें वीर्य लब्धि उपजती है अर्थात् पुद्गलों का चय उपचय करनें की शक्ति जीव में होती है तथा बाल वीर्य, बाल पण्डित वीर्य,और पण्डित वीर्य, जाव पाता है यह उपरोक्त पांचूं हीं प्रकृति अंतराय कर्म की है सो

जीव के देशतं सदा क्षयोपसम रहती है जिससें सदा जीव में पांचो लब्धि पाती है, अर्थात् दान देनेकी लब्धि तो जीवके निरंतर है और दान देता है सो जोगों का व्यापार है, लाभ लब्धि भी जीवके निरंतर है परंतु वस्तुवों का लाभ तो किसी समय ही होता है, ऐसें ही भोग उपभोग लब्धि भी जीवके निरंतर रहती है परंतु भोग उपभोग तो भोगवें उसही वक्त जोगों का व्यापार है, वीर्य लब्धि भी जीवके निरंतर चौदमां गुण स्थानतक है जिसमें बारवां गुणस्थान तक तो क्षयोपसम भाव है और तेरवें चौदवें गुण स्थान क्षायक भाव की लब्धि है, तात्पर्य पांच लब्धि है सो बारमां गुणस्थान तक क्षयोपसम भाव है सो जीवका निरमला गुन है उसही का नाम निरजरा है, और ज्यो अंतराय कर्म का क्षयोपसम होनेसें तथा पुन्योदय सें भोग उपभोग जीव को मिलता है जिसें साधू भोगवें सो तो शुभ जोग व्यापार है क्योंकि साधू तो वस्तु प्राशुक निरदोष जिन आज्ञा प्रमाण भोगते हैं इसलिये, और ग्रहस्थ ज्यो पुद्गल भोगता है सो सावद्य जोग व्यापार है यानें अशुभ जोग हैं, अब तीन प्रकार के वीर्य हैं जिसका वर्णन् कहते हैं ।

॥ ढाल तेहिज ॥

हिवें वीर्य तणां तीन भेद छै । तिणरी करिजो पिछाण हो ॥ मु ॥ बाल वीर्य कहि छै बालनीं । चौथा गुण ठाणां तांई जांण हो ॥ मु ॥ ॥ नि ॥ ५० ॥ पण्डित वीर्य कहि छै पण्डित तणौं । छट्ठाथी लेई चौदमें गुण ठांण हो ॥ मु ॥ बाल पण्डित कही छै श्रावक तणौं । येह तीनूंहीं उज्वल गुन जांण हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५१ ॥

कदे जीव बीर्य नें फोड़वे । ते तो छै जोग व्यापार हो ॥ मु ॥ ते सावद्य निरवद्य तो जोग छै । बीर्य सावद्य नहीं छै लिगार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ५२ ॥ लब्धि बीर्य नें तो बीर्य कह्यो । करण बीर्य नें कह्यो छै जोग हो ॥ मु ॥ ते पिण शक्ति बीर्य छै त्यां लगै । त्यां लग रहै पुद्गल संजोग हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५३ ॥ पुद्गल विन बीर्य शक्ति हुवै नहीं । पुद्गल विन नहीं जोग व्यापार हो ॥ मु ॥ पुद्गल लागै छै त्यां लगें जीवरे । जोग बीर्य छै संसार मझार हो ॥ ॥ मु ॥ नि ॥ ५४ ॥ बीर्य शक्ति तो निजगुण जीवरो । अंतराय अलगो हुयां जांण हो ॥ मु ॥ ते बीर्य निश्चय हीं भाव जीव छै । तिण में शङ्का मत आंण हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५५ ॥ येक मोह कर्म उपसम हुवां । नीपजै उपसम भाव दोय हो ॥ ॥ मु ॥ उपसम समकित नें उपसम चारित्र हुवे । ते तो जीव ऊजलो हुवे सोय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ५६ ॥ दरशन मोहनी उपसम हुवां । निपजै उपसम समकित निधान हो ॥ मु ॥ चारित्र मोहनी उपसम हुवां । प्रगटै उपसम चारित्र प्रधान हो ॥ ॥ मु ॥ नि ॥ ५७ ॥ च्यार घनघाती कर्म क्षय

हुवां । जब प्रगटें चायक भाव हो ॥ मु ॥ ते गुण सर्वथा ऊजला । त्यांरो जुदो जुदो छै स्वभाव हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५८ ॥ ज्ञानावरणी सर्वथा चय हुवां । ऊपजै केवल ज्ञान हो ॥ मु ॥ दरशनावरणी पिण सर्व चय हुवां । उपजै केवल दरशन प्रधान हो ॥ मु ॥ नि ॥ ५६ ॥ मोहनीय कर्म चय हुवां सर्वथा । बाकी रहै नहीं अंसमात्र हो ॥मु॥ जब चायक समकित प्रगटें । वली चायक चारित्र यथाख्यात हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६० ॥ दरशन मोहनीय चय हुवां सर्वथा । नींपजै चायक समकित प्रधान हो ॥ मु ॥ चारित्र मोहनीय चय हुवां नींपजै । चायक चारित्र निधान हो ॥ मु ॥ ॥ नि ॥ ६१ ॥ अंतराय कर्म अलगो हुवां । चायक वीर्य शक्ति होवै ताय हो ॥ मु ॥ चायक लब्धि पांचूं ही प्रगटें । किण बातरी नहीं अंतराय हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६२ ॥ उपसम चायक चयोपसम भाव निरमला । ते निजगुण जीवरा निरदोष हो ॥ ॥ मु ॥ ते तो देशथकी जीव ऊजलो । सर्व ऊजलों ते जीव मोख हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६३ ॥ देश व्रत छै श्रावक तणों । सर्व व्रत साधूरे छै ताहि

हो ॥ मु ॥ देश व्रत समायो सर्व व्रतमें । ज्युं निरजरा समायी मोक्ष मांहि हो ॥ मु ॥ नि ॥ ॥ ६४ ॥ देश थकी ऊजलों ते निरजरा । सर्व ऊजलों ते जीव मोख हो ॥ मु ॥ तिण सूं निरजरानें मोक्ष दोनूं जीव छै । उज्वल गुण जीवरा निरदोष हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६५ ॥ जोड कीधी छै निरजरा ओलखायवा । श्रीजीद्वारा शहर मझार हो ॥ मु ॥ सम्वत् अट्ठारे वर्ष छपनें । फागण सुद दसमी गुरुवार हो ॥ मु ॥ नि ॥ ६६ ॥

॥ भावार्थ ॥

वीर्य के तीन भेद हैं बाल वीर्य १ पण्डित वीर्य २ बाल पण्डित वीर्य ३ बाल वीर्य तो पहिला गुण ठाणां तक है, पण्डित वीर्य छट्ठा गुण ठाणां से चौदमां गुणठाणां तक और बालपण्डित वीर्य सिर्फ पांचमें गुणठाणे हीं है, यह तीनूं हीं वीर्य जीव का उज्वल गुन है अंतराय कर्म अलग होने से प्रगट होती है, क्षयोपस्म भाव की वीर्य तो बारमां गुण स्थान तक है और क्षायक भाव की वीर्य तेरमें चौदमें गुणस्थान है, अव्रती को बाल, सर्व व्रतीको पण्डित, और व्रताव्रती को बालपण्डित कहते हैं, जब जीव वीर्य को फोडता है तब जोगों द्वारा कर्तव्य करता है सो सावद्य निरवद्य दोनू है परंतु वीर्य गुन सावद्य नहीं है वीर्य तो क्षयोपस्म तथा क्षायक भाव है, लब्धि वीर्य का तो वीर्य अर्थात् शक्ति और करण वीर्य को जोग कहा है, जहांतक पुद्गलों का संयोग है वहांतक करण वीर्य है इसलिये कर्ण वीर्य को जोग कहा है जबतक जीव पुद्गलों को ग्रहण करता है तबतक जोगों की वर्तना है, पुद्गलों

के विना जोगों का व्यापार नहीं हैं, और पुद्गलों को ग्रहण कर-णे की शक्ति जीव में उत्पन्न हुई है उसका नाम वीर्य है जीवके भाव हैं सो निश्चय ही जीव है, मोह कर्म को उपस्माने अर्थात् दवाने सें जीवके भाव उत्पन्न हुये उसका नाम उपस्म भाव है जिससें दोय गुन प्रगट होते हैं दरशन मोहनीय को उपस्मानें सें उपस्म समकित, और चारित्र मोहनीय को उपस्माने सें उपस्म चारित्र येह दोनूं हीं जीव के निरमल गुन है, च्यार घातिक कर्म क्षय होने सें जीवके जो भाव निष्पन्न होते हैं उसें क्षायक भाव कहते हैं-ज्ञानावरणीय क्षय होने से केवल ज्ञान, दरशनावरणी क्षय होने सें केवल दरशन; मोहनीय कर्म दो प्रकार का है दरश-न मोहनीय क्षय होने सें क्षायक समकित और चारित्र मोहनीय क्षय होने सें क्षायक चारित्र प्रगट होता है, चौथा घातीक कर्म अंतराय है सो क्षय होने सें क्षायक वीर्य गुन प्रगट होता है जि-ससें दानालब्धि आदि पांचूं हीं लब्धि क्षायक भाव की होजाती है तब किसी बात की अंतराय नहीं रहती है,तात्पर्य उपस्म भाव क्षयोपसम भाव और क्षायक भाव ये तीनूं हीं जीवके निरमल गुन हैं सो भाव जीव है तथा जितनां जितनां जीव निरमला हैं वोही निरजरा है वोही जीवका निरदोष गुन है, अर्थात् देशतं जीव उजला है सो तो निरजरा है और सर्व तं जीव उजला है वोह मोक्ष हैं, जैसें देश व्रत सर्व व्रत में समा जाता है वैसें ही निरज-रा मोक्ष में समाजाती है, निरजरा भी जीवका निरदोष गुन है और मोक्ष भी जीवका निरदोष गुन है दोनूं हीं भाव जीव है, निरजरा को ओलखाने के लिये स्वामी श्री भीषनजी स्वामीजी द्वार-शहर में सम्वत् १८५६ मिती फालगुन सुद १० गुरुवार को ढाल जोड कर कही उसका भावार्थ मैंने मेरी बुद्ध्यनुसार कहा जिस में कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे वारम्बार मिच्छामि दुकडं है।

आपका हितेच्छु

श्रा० जौहरी गुलाबचंदलूणीया

॥ दोहा ॥

निरजरा तणों निर्णय कह्यो । ते उज्वल गुणे विशेक ॥ ते निरजरा हुवै छै किण विधै । ते सुण ज्यो आंणि विवेक ॥ १ ॥ भूख तृषा शीत तापादिके कष्ट भोगवै विविध प्रकार ॥ उदय आवै ते भोगव्यां । जब कर्म हुवै छै न्यार ॥ २ ॥ नरकादिक दुःख भोगव्यां । कर्म घस्यां थी हलवो थाय ॥ आतो सहजें निरजरा हुई जीवरै । तिण में किणे मूल उपाय ॥ ३ ॥ निरजरा तणु कांमी नहीं । कष्ट करै छै विविध प्रकार ॥ तिणरा कर्म अल्पमात्र झडै । अकाम निरजरारो यह विचार ॥ ४ ॥ इह लोक अर्थे तप करै । चक्रिवर्तादिक पदवी कांम । केई परलोक अर्थे तप करै । नहीं निरजरा तणां परिणाम ॥ ५ ॥ केई जस महिमां वधारवा तप करै छै तांम ॥ इत्यादिक अनेक कारण करै । ते निरजरा कहि छै अकाम ॥ ६ ॥ शुद्ध करणी निरजरा तणीं । तिण सूं कर्म कटै छै तांम ॥ थोड़ा घणों जीव ऊजलो हुवै । ते सुणों राखि चित ठांम ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

निरजरा का निर्णय तो ऊपर कहा अब उसकी करणी का वर्णन करते हैं निरजरा अकाम और सकाम दो प्रकार सें होती है प्रथम अकाम अर्थात् निरजरा का कामीं नहीं परंतु शीत ताप आदि अनेक प्रकार सें काया कष्ट करै जिससें कर्म झड के जीव उज्वल होय तथा उदय होय उसें भोगवें नरकादिक के दुःख उदय होय सो भोगते भोगतें जीव हलका होय यहतो सहझें ही निरजरा हुई परंतु निरजरा होनें का उपाय नहीं जानता किन्तु दुःखों को सहन किया जिससें कर्म झड. तथा उदेरि कर कष्ट लिया और उसें सम भाव सें सहन किया तो निरजरा हुई अथवा यह लोक के सुखों के निमित्त परलोक देवादिक के सुखों के निमित्त और जस महिमां वधानें के निमित्त तप करे सो अकाम निरजरा है, और जो निरजरा को जानकर निरजरा का कामीं होके अनेक प्रकार सें तप करैं उसका नांम सकाम निरजरा है; निरजरा की करणी शुद्ध और निरदोष है करणी करणें सें अशुभ कर्म झडकर जीव ऊजला होता है जिसका वर्णन करते हैं।

॥ ढाल ॥

दूजो मंगल सिद्ध नमुं नित ॥ एदेशी ॥

देश थकी जीव ऊजलो हुवै छै। ते तो निरजरा अनूंपजी ॥ हिव निरजरा तणीं शुद्ध करणी कहुं छूं। ते सुणज्यो धरि चूंपजी ॥ या शुद्ध करणीं कर्म काटणारी ॥ १ ॥ ज्यूं साबू दे कपड़ा नें तपावै। पाणीं सूं छांटै करै संभालजी। पछै पाणीं सूं धोवै कपड़ा नें। जब मैल छूटै तत्कालजी ॥

॥ या ॥ २ ॥ ज्यूं तप करिनें आतम नें तपावे । ज्ञान जल सूं छांटे न्हायजी ॥ ध्यान रूप जलमांहि झकोलै । जब कर्म मैल झड़जायजी ॥ या ॥ ॥ ३ ॥ ज्ञान रूप साबण शुद्ध चोखो । तप रूपी यो निरमल नीरजी ॥ धोबी जिम छै अंतर आतम । ते धोवै निजगुण चीरजी ॥ या ॥ ४ ॥ कामीं छै एकान्त कर्म काटणरो । और वंछा नहीं कांयजी ॥ ते तो करणी येकान्त निरजरारी । तिण सूं कर्म मैल झड़जायजी ॥ या ॥ ५ ॥ कर्म काटणरी करणी चोखी । तिणरा छै बारै भेदजी ॥ तिण करणी कियां थी निरजरा हुवे छै । ते सुण ज्यो आंणि उमेदजी ॥ या ॥ ६ ॥ अणशण करि च्यारूं आहारज त्यागै । करै जावज्जीव पच्चखाणजी ॥ अथवा थोड़ा काल तांई त्यागै । एह वी तपस्या करै जांण जांणजी ॥ या ॥ ७ ॥ शुभ जोग रूंध्यां साधूरै हुवै संवर । श्रावकरै व्रत हुवै ताहि जी ॥ पिण कष्ट सह्यां सूं निरजरा हुवै छै । तिण सूं घाली छै निरजरा मांहि जी ॥या॥ ॥ ८ ॥ ज्यूं ज्यूं भूख तृषा अति लागै । तिम तिम उपजै कष्ट अत्यंत जी ॥ ज्यूं ज्यूं कर्म कटै

हुवै न्यारा । समैं समैं खिरै छै अनन्तजी ॥ या ॥
॥ ९ ॥ ऊणूं रहै ते उणोदरी तप छै । ते तो द्रव्य
नें भाव छै न्यार जी ॥ द्रव्यैं तो उपग्रण ऊंणा
राखै । वलि पूरो न करै आहारजी ॥ या ॥ १० ॥
भावैं ऊंणों क्रोधादिक निवरतै । कलहादिक देवै
निवारजी ॥ समता भाव छै आहार उपाधि थी ।
एहवो अणोदरी तपसारजी ॥ या ॥ ११ ॥ भि-
त्ताचरी तप भित्ता त्याग्यां हुवै । ते अभिग्रह छै
विवध प्रकारजी ॥ द्रव्य त्तेत्र काल भाव अभिग्र-
ह छै । त्यांरो छै बहु विस्तारजी ॥ या ॥ १२ ॥
रश रो त्याग करै मन सूंधे । छोडयो विषयादिक
रो स्वादजी ॥ अरश विरश आहार भोगवै समता
सुं । तिणरै तप तणीं हुवै समाधजी ॥या॥१३॥
काया क्लेश तप कष्ट कियां हुवै । अणशण करै
विविध प्रकारजी ॥ शीत तापादिक सहै खाज न
खिणैं । वलि न करै शोभ नें सिणगारजी ॥या॥
॥ १४ ॥ प्रत संलेहणिया तप च्यार प्रकारे । ज्यां-
रो जुवा २ छै नांमजी ॥ कषाय इन्द्री नें जोग
सलेहणा । विवत सेंणाशण सेवणां तांमजी ॥या॥
॥ १५ ॥ श्रुत इन्द्री नें विषय नां शब्द सुं रूंधै ।

विषै शब्द न सुणों तिंवारजी ॥ कदा विषैरा शब्द कानां में पडियां । राग द्वेष न करै लिगारजी ॥ ॥ १६ ॥ चक्षु इन्द्री रूप सुं संलीनता । घ्राण इन्द्री गंध सुं जांणजी ॥ रश इन्द्री रश सूं नें स्पर्श इन्द्री स्पर्श सुं । श्रुत इन्द्री ज्यूं लीज्यो पिछाणजी ॥या॥ ॥ १७ ॥ क्रोध उपाजियां रूंधण करणों । उदय आयो निरफल करणुं तांमजी ॥ मान माया लोभ इम हिज जाणों । कषाय संलेहणां तप हुवै आंमजी ॥ या ॥ १८ ॥ पाडुवा मन नें रूंध देणों । भलो मन प्रवर्तावणों तांमजी ॥ इमहिज वचन काया नें जाणों । जोग संलेहाणियां तप हुवै आंमजी ॥ या ॥ १९ ॥ स्त्री पशु पंडक रहित थानक सेवै । ते पिण शुद्ध निरदूषण जांणजी ॥ पीढ पाटादिक निरदोष सेवै । विवित सैणाशण तप येम पिछाणजी ॥ या ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

निरजरा अर्थात् निरमला जीव देशतः होय सो निरजरा है सो किस करणी करणें सें होता है सो कहते हैं-भूख तृषा शीत ताप आदि अनेक प्रकार सें कष्ट उदय होय उसें सम परिणामों सें सहन करें तब अशुभ कर्मों का क्षय होय अर्थात् जीव सें कर्म अलग होते हैं, वे दो प्रकार सें होते हैं अकाम निरजरा और सकाम निरजरा-नरकादिक के दुःख भोगनें सें सहज हीं जीव हल-

का होय तथा निरजरा का कामीं नहीं और यह लोक परलोक काम भोगादि निमित्त अथवा यश महिमां बधानें को तपस्या करें उसें अकाम निरजरा कही है जिससें कर्म अल्प मात्र झड़ते हैं; दूसरी सकाम निरजरा कर्म काटणें के लिये करें अर्थात् निरजरा का कामी होके तप करें जिसको सकाम निरजरा कहि है, निरजरा की करणी शुद्ध निरदोष है जिससें जीव कर्ममयी मैल को अलग कर के उज्वल होता है जैसें धोबी कपड़े को साबुन देके तावड़े में तपाता है और पानी सें साफ़ करता है वैसे ही तप करके आतम प्रदेशों को तपावें ज्ञानरूप साबुन देके ध्यानरूप जल सें धोवी समान अंतर आतमा है सो पाप मयी मैल सें जीवके प्रदेश मैले होरहे हैं उन्हें धोवें उसें निरजरा की करणी कहते हैं उसके बारह भेद हैं सो कहते हैं।

१–अणशण अर्थात् आहार पानी भोगने के त्याग करें थोडे काल पर्य्यंत अथवा जावज्जीव पर्य्यंत जिसको अणशण कहते हैं, साधू शुभयोगों को रूंधें तब उनके तो जितनें शुभयोग रुके उतनां हीं संवर होता है और श्रावक का खाना पीना आदि कर्तव्य सावद्य हैं अशुभयोग हैं जिसें त्यागनें सें व्रत संवर होता है परंतु कष्ट को सम परिणामों सें साधु तथा श्रावक सहन करते हैं जिस सें कर्मक्षय होके जीव निरमल होता है इसलिये निरजरा की करणी कही है।

२–ऊणोदरी तप दो प्रकार सें होता है, द्रव्य और भाव; ऊणा यानें कम करनें सें होता है, द्रव्यें तो उपग्रण आदि वस्तु कम रक्खें तथा आहार पानी कम करें, और भावें क्रोध मान माया लोभ को घटावै।

३–भिक्षाचरी तप भिक्षा छांडनें सें, अर्थात् द्रव्य क्षेत्र काल भाव सें अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण करें और निरदोष भिक्षा आचरतें कष्ट होय उन्हें सहन करें।

४–रश परित्याग अर्थात् घृत मिष्टान आदि रशों का त्याग करें और अरस विरस आहार को सम परिणामों सें भोगवें यानें राग द्वेष न करें।

५-काया क्लेश अर्थात् शरीर की शोभा विभूषा न करैं शीत ताप आदि अनेक प्रकारों के कष्टों द्वारा काया को क्लेश होने से सम परिणामों से सहन करैं।

६-प्रति सलेहणा तप च्यार प्रकार से होता है कषाय प्रति सलेहणा १, इन्द्रीय प्रति सलेहणा २, जोग प्रति सलेहणा ३, विवत सैणाशण सेवणा ४।

१-कषाय प्रति सलेहणा अर्थात् क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, ये च्यारों प्रकार की कषायों को न करना तथा उदय आई को निःफल करनां।

२-जोग प्रति सलेहणा अर्थात् मन १, वचन २, काया ३, ये तीनों प्रकार के अशुभ जोगों को रूंधना और शुभ जोगों को प्रवर्त्तांना।

३-इन्द्रीय प्रति सलेहणा अर्थात् श्रोत १ चक्षु २ घ्राण ३ रश ४ स्पर्श ५ इन पांचो इन्द्रियों की शब्दादिक विषयों में राग द्वेष रहित रहना तथा इनके काम भोगों से विरक्त होना।

४-विवत सैणाशण सेवणा अर्थात् स्त्री पशु नपुंशक रहित निरदोष मकान में रहना तथा पाटा चोकी आदि निरदोष सेना।

यह उपरोक्त षट प्रकार का बाह्य तप कह्या अब षट प्रकार का अभ्यन्तर तप कहते हैं।

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

छै प्रकारे बार्ह्य तप कह्यो छै। ते प्रसिद्ध चावो दीसंतजी॥ हिवे छै प्रकारे अभ्यन्तर तप कहुं छुं। ते भाष्यो छै श्री भगवंतजी॥ या॥ २१॥
प्रायाश्चित्त कह्यो छै दश प्रकारें। ते दोष आलोवे प्रायाश्चित्त लेवंतजी॥ ते कर्म खपावै आराधक

थावै । ते तो मुक्ति में वेगो जावंतजी ॥ या ॥
॥ २२ ॥ विनय तप कह्यो छै सात प्रकारें । त्यांरो
छै वहु विस्तारजी ॥ ज्ञान दरशन चारित मन वि-
नय । वचन काया नैं लोग ववहारजी ॥ या ॥
॥ २३ ॥ पांचूं ज्ञान तणां गुण ग्राम करणां ।
ज्ञान विनय करणों येहजी ॥ दरशन विनयरा दोय
भेद छै । सुश्रुषा नैं अणआसातनां तेहजी ॥
॥ या ॥ २४ ॥ सुश्रुषा तो बडां साधुरी करणीं
त्यांनैं वंदना करणीं शीशनामजी ॥ ते सुश्रुषा दश
प्रकार कहि छै । त्यांरा जुदा २ नांम तांमजी ॥
॥ या ॥ २५ ॥ गुरु आयां ऊठ ऊभो होणों ।
आशण छोडि देणों तांमजी ॥ आशण आमंत्र-
णों नैं हर्ष सुं देणों । सत्कार सनमान देणों आंम
जी ॥ या ॥ २६ ॥ वंदना करी हात जोडि रहै
ऊभो । आवतो देख सामों जायजी ॥ गुरु ऊभा
रहै जिहांलग ऊभो रहणों । जावै जब पोंहचावै
तायजी ॥ या ॥ २७ ॥ अण आशातनां विनय-
रा भेदजे । पैंतालीश कह्या जिनरायजी ॥ अरि-
हन्त नैं अरिहन्त धर्म प्ररूप्यो । वलि आचार्य्य नैं
उपाध्यायजी ॥ या ॥ २८ ॥ थविर कुल गण संघ

नों विनय । कृयावादी सम्भोगी जांणजी ॥ मति ज्ञानादिक पांचूं ही ज्ञानरो । येह पन्नरे बोल पिछांणजी ॥ या ॥ २६ ॥ पन्नरे बोलां में पांच ज्ञान फेर कह्या छै । ते दीशै छै चारित्त साहित्तजी ॥ ए पांचूं ही ज्ञान फेर कह्या त्यां री । विनय तणीं और रीतजी ॥ या ॥ ॥ ३० ॥ सामायक आदि पांचूं ही चारित्र । त्यांरो विनय करणों यथा योग जी ॥ सेवा भक्ति त्यां री यथायोग करणीं त्यांसूं करणों निरदोष संभोगजी ॥या॥३१॥ असातना टालणी नें विनय करणुं । भक्ति करिदेणों बहु सनमानजी ॥ गुण ग्राम करि नें दीपावणां त्यांनें । दरशन विनय छै शुद्ध श्रद्धानजी ॥ या ॥ ३२ ॥ सावज्झ मन नें परो निवारैं । ते सावज्झ बारे प्रकारजी ॥ बारे प्रकारे निरवद्य मन प्रवर्तावे । तिणसूं निरजरा हुवै श्रीकारजी ॥ या ॥ ३३ ॥ इम हिज सावद्य वचनरा भेद छै । तिण सावद्य नें देवै निवारजी ॥ निरवद्य वचन बोलै निर दूषण । ते बारे ही बोल विचारजी ॥ या ॥ ३४ ॥ काया अजयणा सुं नहीं प्रवर्तावैं । तिणरा भेद कह्या सातजी ॥ ज्यूं सातूं ही काया जयणा सूं प्रवतावे ।

जब कर्म तणीं हुवै घातजी ॥ या ॥ ३५ ॥ लोग व्यवहार विनय कह्यो सात प्रकारें । गुरु समीपै वर्त्त तो तांमजी ॥ गुरुवादिकरै छांदे चालणों । ज्ञानांदिक हेतै करणों त्यांरो कांमजी ॥ या ॥ ॥ ३६ ॥ भणायो त्यांरो विनय करणों । आरत गवेषणा करिवो तांमजी ॥ प्रस्तावे अवशरनूं जांण होवणों । सर्व कार्य्य करणा अभिरामजी ॥ या ॥ ॥ ३७ ॥ वैयावच तपछै दश प्रकारें । ते वैयावच साधांरी जांणजी ॥ कर्मां री कोडि खपैछै तिणथी॥ नेडी हुवै निरवाणजी ॥ या ॥ ३८ ॥ सझाय तप छै पांच प्रकारें । जे भाव सहित करै सोयजी॥ अर्थ नें पाठ विवरा शुध गुणियां । कर्मांरी कोडि खय होयजी ॥ या ॥ ३९ ॥ आर्त्त रौद्र ध्यान निवारैं । ध्यावे धर्म नें शुक्ल ध्यानजी ॥ ध्यावंतां ध्यावतां उत्कृष्ट ध्यावै । तो उपजै केवल ज्ञानजी॥ ॥ या ॥ ४० ॥ विवशग तप छै तजवारो नांम । ते द्रव्यैं नें भावैं छै दोयजी ॥ द्रव्यें विवशग च्यार प्रकारैं । ते विवरो सुणों सहु कोयजी ॥ या ॥ ॥ या ॥ ४१ ॥ शरीर विवशग शरीर नुं तजवो । इमगण विवशग जांणजी ॥ उपधि नें तजवो ते

उपधि विवशग । भात पांणी नें इमहिज पिछाणा-
जी ॥ या ॥ ४२ ॥ भावें विवशग रा तीन भेद छै।
कषाय संसार नें कर्मजी ॥ कषाय विवशग च्यार
प्रकारें । क्रोधादिक च्यारूं छोडयां धर्मजी ॥ या ॥
॥ ४३ ॥ संसार विवशग संसार नों तजवो ।
तिणरा भेद छै च्यारजी ॥ नारकी तिर्यंच मनुष
नें देवा । त्यांनें तजनें त्यांसूं हुवै न्यारजी ॥ या ॥
॥ ४४ ॥ कर्म विवशग आठ प्रकारें । ते तजणां
आठूं ही कर्मजी ॥ त्यांनें ज्यूं ज्यूं तजै ज्यूं हल-
का होवै।एहवी करणी छै निरजरा धर्मजी॥या॥४५॥

॥ भावार्थ ॥

छै प्रकारकी बाह्य करणी निरजराकी कही अब छै प्रकारें अभ्यन्तर करणी कहते हैं ।

१-प्रायश्चित अर्थात् व्रत प्रत्याख्यान में दोषलगा उसका प्रायश्चित्त तप अङ्गीकार करैं जिससें जीव अशुभ कर्म क्षय करके निरम-ला और आराधक होय ।

२-विनय तप सात प्रकार सें होता है ।

१-ज्ञान विनय अर्थात् माति ज्ञान आदि पांचों ज्ञानों का वर्णन् विस्तार सहित करैं तथा ज्ञान वा ज्ञानवंत के गुन करैं ।

२-दरशन विनय अर्थात् समकितदरशन का विनय सुश्रुषा और अणआसातना करनें सें होता है ।

१-सुश्रुषा विनयतो अनेक प्रकारसें तथा दश प्रकार सें गुरू महाराज की तथा अपने सें बडे साधुवों की करणी सो

दश प्रकार कहते हैं-गुरू आवें तब उठ के ऊभा होना १, आशण छोडना २, आशण आमंत्रणा तथा हर्ष सहित देना ३, सत्कार देना ४, सनमान देना ५, वंदना करनां ६, हात जोडके ऊभा रहनां ७, गुरू को आते देख सनमुख जाना ८, गुरू ऊभा रहें तब तक ऊभा रहना ६, जावें तब पांहचाने को जाना १० ।

२-अण आशातना विनय ४५ प्रकारसें अरिहन्त १, अरिहन्त प्ररूपित धर्म २, आचार्य्य ३, उपाध्याय ४, थविर ५, कुल ६, गण ७, संघ ८, क्रयावादी ६, संभोगी १०, मतिज्ञानी ११, श्रुत ज्ञानी १२, अवधि ज्ञानी १३, मन पर्यव ज्ञानी १४, केवल ज्ञानी १५, इन्हों की आशातना न करणी १-सेवा भक्ति करणी २-गुण ग्राम करके दीपाना ३, अर्थात् उपरोक्त पंद्रह बोल कहे जिन्हों का येह ३ प्रकार सें विनय करना तो पंद्रह तीया पैंतालीस हुये ।

३-चारित्र विनय अर्थात् सामायक आदि पांचो चारित्रियांका विनय भक्ति यथायोग करणां तथा चारित्रया सें निरदोष संभोग करनां ।

४-मन विनय अर्थात् बारे प्रकार का सावद्य मन को निवारनां यानें सावद्य मन नहीं प्रवर्त्ताना और बारे प्रकारका निरवद्य मन प्रवर्त्तानां ।

५-वचन विनय अर्थात् बारे प्रकारका सावद्य वचन तजके बारे प्रकार का निरवद्य वचन बोलनां ।

६-काया विनय अर्थात् सात प्रकार के कायाके जोगों को जयणा युत प्रवर्त्ताना ।

७-लोक व्यवहार विनय सात प्रकार सें ।

१-गुरू सें समा प्रवर्तनां यानें गुरू सें विमुख न होना ।
२-गुरू की आज्ञा में रहना ।
३-ज्ञानादिक निमित्त गुरूका कार्य करना ।
४-ज्ञान पढाया जिन्हों का विनय करना ।

५-आरत गवेषणां करणां ।

६-प्रस्तावे अवशर का जानकार होनां ।

७-गुरू के सर्व कार्य हर्ष सहित करनां ।

३-वैयावच्च दश प्रकारकी वैयावच्च जयणायुत शुद्ध साधुवों की करनां ।

४-सज्झाय पांच प्रकारकी सज्झाय करनां ।

५-ध्यान आरत रौद्र ध्यान तजके धर्म और शुक्ल ध्यान ध्यानां ।

६-विवशग अर्थात् तजनां द्रव्य और भाव जिसमें द्रव्य विवशग च्यार प्रकार और भाव विवशग तीन प्रकार सें होता है ।

१-द्रव्य विवशग के च्यार भेद ।

१-शरीर विवशग अर्थात् शरीर की विभूषा तजना तथा पादोप गमनादि करनां ।

२-गण विवशग अर्थात् गुरू आज्ञा सें साधु साध्वी रूपगण को छोडके अलग एकान्त में सज्झाय ध्यान करना तथा सलेषणा आदिकरनां ।

३-उपधि विवशग अर्थात् भण्ड उपगरण तजके नग्नभाव रहना।

४-भत्त पांण विवशग अर्थात् आहार पानी भोगनेका त्याग ।

२-भाव विवशग तीन प्रकार सें ।

१-कषाय विवशग अर्थात् क्रोध मान माया लोभ इन च्यारों कषायों को तजनां ।

२-संसार विवशग च्यार प्रकार सें नारकी तिर्यंच मनुष और देव इन च्यार गति मयी संसार को तजना ।

३-कर्म विवशग आठ प्रकार सें अर्थात् ज्ञानावरणी आदि आठों कर्म्मों को तजनां ।

यह यारै प्रकार उववाई सूत्र में साधुवों के गुन के कथन में है हैं इसलिए यह विनय व्यावच्चादि की विधि साधूकी है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

यह बारे प्रकारे तप निरजरारी करणी ते तपस्या करे जांण जाणजी ॥ कर्म उदेरी उदे आंणि विखेरे । त्यांने नेडी होसी निरवाणजी ॥ या ॥ ॥ ४६ ॥ साधां रे बारे भेद तपस्या करतां । जहां जहां निरवद्य जोग रूंधायजी ॥ तहां तहां संवर होय तपस्यारे लारे । तिणसुं पुन्य लागता मिट-जायजी ॥ या ॥ ४७ ॥ इण तप मांहिलो तप श्रावक करतां । कठे अशुभ जोग रूंधायजी ॥ जब व्रत संवर हुवे तपस्यारे लारे । लागता पाप मिटजायजी ॥ या ॥ ४८ ॥ साधू श्रावक सम दृष्टी तपस्या करे तो ॥ उत्कृष्टी टलै कर्म छोतजी ॥ कदा उत्कृष्टी रसान आवे तिण तपथी । तो बांधे तीर्थंकर गोतजी ॥ या ॥ ४६ ॥ इण तप मांहि-लो तप अविरती करेतो । तिणरे पिण कर्म कटाय-जी ॥ केई प्रति संसार करे इण तपथी । वेगो जावे मुक्तिगढ म्हांयजी ॥ या ॥ ५० ॥ तपस्या थी आणो संसार नों छेहडो । वलि कर्मारो करे अंतजी ॥ वलि इण तपस्या तणों प्रतापे । वडा-

संसारीरो सिद्ध होवंतजी ॥ या ॥ ५१ ॥ कोडां भवांरा कर्म संच्या हुवै तो । लिण में देवै खपायजी ॥ एहवो छै तप रतन अमोलक । तिणरा गुणांरो पार न आयजी ॥ या ॥ ५२ ॥ निरजरा तो निरवद्य उजलो हुवांथी । कर्म निवर्तै हुवै न्यारजी ॥ तिण सुं निरजरा ने निरवद्य कही छै बीजूं निरवद्य नहीं छै लिगारजी ॥ या ॥ ५३ ॥ इण निरजरा तणीं करणी छै निरवद्य । तिण सूं कर्मांरी निरजरा होयजी ॥ निरजरा नें निरजरारी करणीं । जुदी जुदी छै दोयजी ॥ या ॥ ५४ ॥ निरजरा तो मोच्च तणों अंस निश्चय । ते देश थी ऊजलो छै जीवजी ॥ जिणारै निरजरा करणारी चूंप लागी छै । तिण दीधी मुक्तिरी नींवजी ॥ या ॥ ५५ ॥ सहजें निरजरा अनादिरी हुवै छै । ते होय होयी नें मिटजायजी ॥ ते कर्म बंध सूं नहीं निवरत्यो ॥ ते संसार में गोता खायजी ॥ या ॥ ५६ ॥ निरजरारी करणी ओलखावण । जोड कीधी श्रीजी द्वारा मझारजी ॥ सम्वत अट्ठारे नैं वर्ष छपनें । चैत वद बीज नें गुरुवारजी ॥ या ॥ ५७ ॥

॥ इति निरजरा पदार्थ ॥

॥ भावार्थ ॥

अणशण उणोदरी आदि बारें प्रकार का तप कहा सो निरजरा की करणी है इसके करणें सें जीव कर्म मयी रज को खपाके उज्वल होता है, पूर्व संचित कर्मों को खपानें के निमित्त उदय में त्याके कष्टों को समपरिणाम सहन करनें सें निरजरा होती है ऐसी करणी करणें सें निरवाण पद नजदीक होता है, साधु मुनिराज बारें प्रकार का तप करें जब जहां जहां निरवद्य जोग रुकैं तब तहां तहां उनके संवर होता है अर्थात् शुभयोगों सें पुन्य बंधते थे पुन्य रुके तथा अशुभ कर्म खय होके जीव ऊजला हुवा सो निरजरा, ऐसें ही बारें प्रकारका तप में से श्रावक तप करै तब ज्यों ज्यों अशुभ योग रूंधे उनसें पाप रुके सो व्रत संवर हुवा और अशुभ कर्म खय होके जीव ऊजला हुया सो निरजरा हुई, और इस निरजरा की करणी बारै प्रकारकी में सें यदि अव्रती तथा मिथ्याती करै तो उनके भी अशुभ कर्म खय होते हैं और जीव निरमला अर्थात ऊजला होता है केई मिथ्याती जीवतो शुद्ध करणीकरनें सें अनन्त संसारी के प्रति संसारी होके अनुक्रम जलदही मोक्ष स्थान पाते हैं, साधु श्रावक समदृष्टी तप करनें सें उत्कृष्ट कर्म छोत टालके उत्कृष्ट रसान आनें सें तीर्थंकर गोत्र बांधते हैं, तप सें संसार का अंत करते हैं बहुसंसारी का लघूसंसारी होके सकल कर्म रहित होकर सिद्ध होते हैं, तपस्या करनें सें क्रोडों भव के संचे हुये कर्म छिण मात्र में खय होते हैं ऐसा अमूल्य रतन तप है इसके गुणों का पार नहीं है निरजरा अर्थात् देशतः जीव निरमला और निरजरा की करणी जो बारें प्रकार की ऊपर कही है सो यह दोनूं ही निरवद्य है दोनूं ही आज्ञा मांहि है दोनूं ही आदरवे योग्य है, कर्मों सें निवर्त्तै सोही निरजरा है इसही लिये निरजरा को निरवध कही है, जितनां जितनां जीव ऊजला है सोही निरजरा है और मोक्ष का अंस है तथा जिस करणी सें ऊजला होता है सो निरजरा की करणी है वो निरवद्य है उसकी जिन आज्ञा है जिस करणी की जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य है उससें पाप कर्म बंधते हैं किन्तु निरजरा नहीं होती और न

पुण्य वंधता है, पुण्य तो निरज़रा की करणी करते शुभ जोगां से बंधता है जिसका वर्णन् पुण्य पदार्थ को ओलखाया वहां विस्तार पूर्वक कहाहो है, इस सातमां पदार्थ में निरजरा को ओलखाया है सो इस जगहें निरजरा किसकां कहना और निरजरा की करणी किसें कहना इसका वर्णन् स विस्तार स्वामी श्री भीखनजी महाराजने ढाल जोडके मेवाड देशान्तरगत नाथ द्वारा सहर में विक्रम सम्वत् १८५६ चैत्र वुद द्वितीया गुरुवार को कहा जिसका भावार्थ निजवुधानुसार मैंने किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ हो उसका मुझे मिच्छामि दुकडं, इति सातमा निरजरा पदार्थम् ।

आपका हितेच्छु

श्रा० जोंहरी गुलावचंदलुणीयां जैपुर

॥ अथ आठमां बंधपदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

आठमूं पदारथ वंध छै । तिण जीवनें राख्यो वंध ॥ जे बंध पदार्थ न उलख्यो । ते जीव अछै मोह अंध ॥ १ ॥ बंध थकी जीव दवियो रहै । कांई न रहै उघाडी कोर ॥ ते वंध तणां प्रवल थकी । कांई न चालै जोर ॥ २ ॥ तलाव रूप तो जीव छै । तिण में पडिया पांणी ज्युं बंध जांण ॥ निकलता पाणी रूप पुन्य पाप छै । बंध नें लीजो एम पिछांण ॥ ३ ॥ येक जीव द्रब्य छै

तेहनां असंख्याता प्रदेश ॥ सघलां प्रदेशां आश्रव द्वार छै । सघलां प्रदेशां कर्म्म प्रवेश ॥ ४ ॥ मिथ्यात अविरत नें प्रमाद छै । वलि कषाय जोग विख्यात । ये पांच तणां वीश भेद छै । पनरें आश्रव जोग में समात ॥ ५ ॥ नालारूप आश्रव नाला कर्मनां । ते रूंध्यां हुवै संवर द्वार ॥ कर्मरूप जल आवतो रहे । जब बंध न हुवै लिगार ॥ ६ ॥ तलावरो पाणीं घटै तिणविधे । जीवरै घटै छै कर्म्म ॥ जब कांयक जीव ऊजलो हुवै । ते छै निरजरा धर्म्म ॥ ७ ॥ कदे तलाव रीतों हुवैं । सर्व पाणीं तणों हुवै सोख ॥ ज्युं सर्व कर्म सोखत हुवै । जिम रीता तलाव सम मोख ॥ ८ ॥ बंध छै आठ कर्मां तणों । ते पुद्गलरी पर्याय ॥ तिणबंध तणीं ओंलखनां कहूं । ते सुणज्यो चित ल्याय ॥ ९ ॥

॥ भावार्थ ॥

आठमां बंध पदार्थ कहते हैं जीवके कर्म बंधे हुए हैं उसका नाम बंध है जिससें जीव के ज्ञानादिगुन दबे हुए हैं, जीव चेतन अनन्त बली और प्राक्रमीं है परंतु जहांतक जीव कर्म्म मयी पाश सें बंधा है तहां तक जीवका जोर अर्थात् बस नहीं चलता तथा जीवके ज्ञानमयी नेत्र मोह कर्म सें आच्छादित हो रहे हैं जिससें मार्ग को नहीं देखता इस लिए बंध और मोक्ष को जानने के लिए दृष्टान्त कहते हैं जीव मयी तालाव है भरेहुए पानीरूप बंध और

निकलता पानी रूप पुन्य पाप है, तालाव में पानी आने को नाले होते हैं तो इस जीव मयी तालाव के मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय और जोग यह पंच आश्रवरूप पांच नाले हैं जिस से कर्म्म मयी पानी आता हैं, जब जीव आश्रव रूप नालों को रोक कर बंध रूप जो बंधा हुआ पानी है उसे उलेची उलेची अर्थात् कर्मों को उदेरी उदेरी अणशण उणोदरी आदि बारं प्रकार का तप करके पुन्य पापरूप पानी को तालाव से अलग करने से अनुक्रम में सर्व कर्म्मों का नांश अर्थात् क्षय करके रीता तालाव रूप मोक्ष पद पाता है, तात्पर्य तालाव में पानी भरा है वैसे ही जीव मयी तालाव में बंधे हुये कर्म रूप पानी है जहांतक उदय में नहीं आवे तहांतक उन्हीं पुन्य पाप की प्रकृतियों का नांम बंध हैं जिसका यथार्थ वर्णन् करते हैं।

॥ ढाल ॥

अहि अहि कर्म विडंबणा ॥ एदेशी ॥

बंध नीपजै छै आश्रव द्वार थी। तिण बंध नें कह्यो पुन्य पापोजी ॥ ते पुन्य पाप तो द्रव्य रूप छै। भावें बंध कह्यो जिन आपोजी ॥ बंध पदारथ ओलखो ॥ १ ॥ ज्यूं तीर्थंकर आय ऊपना। ते द्रव्य तीर्थंकर जाणोंजी ॥ भाव तीर्थंकर कहिजे तिणसमें। ते होसी तेरमें गुण ठाणोंजी ॥बं॥ ॥ २ ॥ ज्यूं पुन्य पाप लागो कह्यो। ते तो द्रव्यें छै पुन्य पापोजी ॥ भावें पुन्य पाप तो उदय हुवां दुःख सुख भोगवै हर्ष संतापोजी ॥ बं ॥ ३ ॥ तिण

बंध तणां दोय भेद छै । येक पुन्य तणों बंध जाणोंजी ॥ दूजो बंध छै पापरो । दोनूं बंधरी करिजो पिछाणोंजी ॥ बं ॥ ४ ॥ पुन्य नूं बंध उदय हुआं जीवरैं। सुख साता हुवे छै सोयोजी॥ पापरो बंध उदय हुवां । विवध पणों दुःख होयोजी ॥ बं ॥ ५ ॥ बंध उदय नहीं त्यां लगि जीवनें सुख दुःख मूल न होयोजी ॥ बंध तो छतारूप लागो रहै । फोड़ा न पाडै कोयोजी ॥ बं ॥ ६ ॥ तिण बंध तणां च्यार भेद छैं । त्यांनें रूडी रीत पिछांणोंजी ॥ प्रकृती बंध नें थित बंध दूसरो । अनुभाग नें प्रदेश बंध जाणोंजी ॥ बं ॥ प्रकृती बंध कर्मांरी जुई जुई । कर्मांरा स्वभावरै न्यायोजी॥ बंधी छैं तिण समें बंध छै । जैसी वांधी तैंसी उदय आयोजी ॥ बं ॥ ८ ॥ तिण प्रकृती नें वांधी छै काल सूं ॥ इतरा काल तांई रहसी तामोंजी ॥ पछै तो प्रकृती विरलावसी ॥ थित सूं प्रकृती बंध छै आमोंजी ॥ बं ॥ ९ ॥ अनुभाग बंध रशविपाक छै जिसो जिसो रश देसी त्हांयो जी ॥ ते पिण प्रकृती बंध नूं रश कह्यो । बंध्यो जिसो रस उदय आयो जी ॥ बं ॥ १० ॥ प्रदेश

बंध कह्यो प्रकृती बंध तणों । प्रकृतीरा अनन्त प्रदेशोंजी ॥ ते लोलीभूत जीव सूं होय रह्या । प्रकृती बंध उलखाई विशेषोजी ॥ वं ॥ ११ ॥
आठ कर्मांरी प्रकृति जुई जुई । एकेकांरा अनन्त प्रदेशोजी ॥ इक इक प्रदेशें जीवरै । लोलीभूत हुई छै विशेसोजी ॥ वं ॥ १२ ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव के प्रदेशों के कर्म बंधे हैं उन्हें बंध कहते हैं वोह बंध आश्रव द्वार सें हुवा है जीव आश्रव सें पुण्य और पाप बांधा है सोही बंध है पुण्य पाप तो जीव के उदय होय तब कहते हैं परंतु बंधे हैं जिन्हों को भी द्रव्य निक्षेप की अपेक्षाय पुण्य पाप कहा है जैसें गर्भावास में तथा ग्रहस्थाश्रम में रहतें हुए तीर्थंकर को द्रव्य तीर्थंकर कहते हैं परंतु भाव तीर्थंकर तेरमें गुणस्थान होते हैं वैसें ही पुण्य पाप तो उदय होय तब हैं परंतु पुण्य पाप मयी उदय होने वाले पुद्गल जो जीव बांधे हैं उनको भी द्रव्य पुण्य पाप कहे हैं, ये पुद्गलों का बंध जीव के दोय प्रकार सें हैं येक तो पुण्य बंध और दूसरा पाप बंध, पुण्य का बंध उदय होनें सें जीवके सुख साता होती है और पाप का बंध उदय होनें सें जीवके दुःख असाता होती है परंतु बंधे हुए उदय नहीं होय जब तक जीव के सुख दुःख कदापि नहीं होता है इसलिये जीव के पुण्य पाप बंधा है उसका नाम बंध है वोह च्यार प्रकार सें है, प्रकृति बंध १ स्थिति बंध २ अनुभाग बंध ३ प्रदेश बंध ४ यह च्यार भेद हैं जिसका वर्णन् करते हैं प्रकृति बंध कर्म स्वभाव के न्याय, अर्थात् कर्म बंधे सो प्रकृति पणें बंधे हैं जैसें ज्ञानावरणी कर्म की ५ प्रकृति, दर्शनावरणी कर्म की ९ प्रकृति, मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति, अंतराय कर्म की ५ प्रकृति, वंद-

नी कर्म की २ प्रकृति, नाम कर्म की ९३ प्रकृति, गौत्र कर्म की २ प्रकृति और आऊषा कर्म की ४ प्रकृति हैं, यह आठ कर्म्मों की १४८ प्रकृती हैं सो जीव के बंधी वोह प्रकृती बंध है, यही प्रकृतियां स्थिति सहित बंधी है इसलिये स्थिति बंध, यही प्रकृतियां उदय होने से शुभाशुभ रस जीव को देगी इसलिये अनुभाग बंध, और येही प्रकृतियां अनन्तानन्त प्रदेसी जीवके असंख्याता प्रदेशों से लोलीभूत हो रही है इसलिये प्रदेश बंध कहा है, अब आठ कर्म्मों की स्थिति कितनीं कितनीं है सो कहते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी बेदनीं । वलि आठमूं कर्म अंतरायोजी ॥ यांरी थित छै सघलांरी सारखी ॥ ते सुण ज्यो चित ल्यायोजी ॥ बं ॥ १३ ॥ थित थां च्यारूं कर्मां तणीं । अंतर महुरत प्रमाणोंजी ॥ उत्कृष्टी थित यां च्यारूं तणीं । तीस कोड़ा कोड़ि सागर लग जांणोंजी ॥ बं ॥ १४ ॥ थित दर्शण मोहनीय कर्म्मनीं । जघन्य अंतर महूरत प्रमाणोंजी ॥ उत्कृष्टी स्थित छै एहनीं । सित्तर कोड़ा कोड़ि सागर जाणोंजी ॥ बं ॥ १५ ॥ जघन्य थित चारित मोहनीय कर्म्म नीं । अंतर महूरत कहि जगदीसोजी ॥ उत्कृष्टी स्थित छै एहनीं । सागर कोडा कोडि चालीसोजी ॥ बं ॥ १६ ॥ थित छै आऊषा कर्मरी । जघन्य

अंतर महूरत होयोजी ॥ उत्कृष्टी सागर तेतीसनीं । आगैं आऊषारी स्थिती न कोयोजी ॥बं॥१७॥ स्थित नाम गौत्र कर्म तणीं । जघन्य आठ महुरत सो-योजी ॥ उत्कृष्टी इक इक्क कम्मनीं । बीस कोड़ा कोड़ि सागर होयोजी ॥ बं ॥ १८ ॥ येक जीवरै आठ कम्मां तणां । पुद्गलरा प्रदेश अनन्तोजी॥ ते अभव्य जीवांथी मापियां । अनन्त गुणां कह्या भगवंतोजी ॥ बं ॥ १९ ॥ ते अवश्य उदय आ-सी जीवरैं । भोगवियां विन नांहि छुटायोजी ॥ उदै आयां विन सुख दुःख हुवै नहीं । उदय आ-यां सुख दुःख थायोजी ॥ बं ॥ २० ॥ शुभ परि-णामैं जे कम्मं बांधिया । ते शुभ पणैं उदय आ-सीजी ॥ जे अशुभ परिणामैं बांधिया । तिण कम्मां सूं दुःख थासीजी ॥ बं ॥ २१ ॥ पंच वर्णा आठूं हीं कम्मं छै । दोय गंध नैं रश पांचूं हीजी॥ चोपरसी आठूं हीं कर्म छै । रूपी पुद्गल कर्म आठूं हीजी ॥ बं ॥ २२ ॥ कर्म तो लूखानें चोप-ड़्यां । वलि ठंडानैं ऊन्हा होयोजी ॥ कर्म हलका नहीं भारी नहीं । सुंहाला नें खरदरा नहीं कोयो जी ॥ बं ॥ २३ ॥ कोई तलाव जल पूरण भरयो ।

खाली ठोर न कोयोजी ॥ ज्युं जीव भरयो कर्मां थकी । आ ओपमां देशथकी जोयोजी ॥ वं ॥
॥ २४ ॥ असंख्याता प्रदेश येक जीवरा । ते असंख्याता जेम तलावोजी ॥ सघला प्रदेश भरया कर्मां थकी ॥ जाणौं भरी चोखूणी वावोजी ॥वं॥
॥ २५ ॥ इक इक प्रदेश छै जीवरो । तिहां अनन्ता कर्मांरा प्रदेशोजी ॥ ते सघला प्रदेश भरिया छै वाव ज्युं । कर्म पुद्गल कियो छै प्रवेशोजी ॥
॥ वं ॥ २६ ॥ तलाव खाली हुवे छै किण विधैं। पाहिलां नालो देवै रूंधायोजी ॥ पछै मोरियादिक छोडै तलावरी ॥ जब तलाव रीतो होय जायो जी ॥ वं ॥ २७ ॥ ज्यूं आश्रव नाला रूंधवें । तपस्या करै हर्ष सहितोजी ॥ जब छेहडो आवै सर्व कर्म नूं । तब जीव हुवै कर्म रहितोजी ॥वं॥
॥ २८ ॥ कर्म रहित हुवां जीव निरमलो । तिण जीव नें कहिजे मोखोजी ॥ ते सिद्ध हुवो छै सास्वतो । सर्व कर्म बंध करदियो सोखोजी ॥ वं ॥
॥ २९ ॥ जोड कीधी छै बंध ओलखायबा । श्रीजीद्वारा शहर मंझारोजी ॥ सम्वत् अठारे वर्ष छप्पनैं । चैत्रवद बारस शनिवारोजी ॥वं॥३०॥इति॥

॥ भावार्थ ॥

ज्ञानावरनीय दरशनावरनीय वेदनीय और अंतराय इन च्यार कर्म्मों की स्थिति जघन्य अंतर महूरत उत्कृष्टी ३० तीस कोड़ा कोडि सागर की, मोहनीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर महूरतकी और उत्कृष्टी स्थिति दरशन मोहनीय कीतो ७० कोड़ा कोड़ि सागर, चारित्र मोहनीय की ४० कोड़ा कोड़ि सागर की, आऊषा कर्म की स्थिति जघन्य अंतर महूरत उत्कृष्टी ३३ सागर की, नाम कर्म गौत्र कर्म की स्थिति जघन्य ८ आठ महूरत की उत्कृष्टी २० बीस कोड़ा कोड़ि सागर की है, इस प्रकार आठों कर्मों की प्रकृतियां की स्थिति बंध जीव के है सो संसार में अभव्य जीव हैं उनसे अनन्त गुणे अधिक येक येक जीवके कर्म प्रदेश हैं, तात्पर्य येक येक जीवके असंख्याता असंख्याता प्रदेश हैं और येक येक प्रदेशोंपर अनन्ते अनन्ते कर्म प्रदेश बंधे हैं उन बंधे हुये कर्म्मों का नांम बंध है वे अवश्य उदय में आवेंगे तब जीव को पुद्गलीक सुखं दुःख होगा, जो शुभ परिणामों से बांधे हैं वे शुभ पणें उदय आवेंगे और जो अशुभ परिणामों से बांधे हैं वे अशुभ पणें उदय आवेंगे, आठों ही कर्मों के पुद्गलों में पांच वरण दोय गंध पांचरश और लूखा चोपड्या (चिकणा) ठंडा ताता ये च्यार स्पर्श हैं, कर्म पुद्गल हलके भारी मुलायिम और खरदरा नहीं है, जैसें तलाव पानी सें सम्पूर्ण भरा हो वैसें ही जीवके असंख्याता प्रदेशमयी तलाव कर्म प्रदेश रूप पानीं सें पूर्ण भरा है, तलाव के पानी आनेके नाले रोककर भरे हुये पानी को निकाल नें को मोरियां खोल कर निकालें तब तलाव पानी रहित होवें वैसें ही जीव मयी तलाव के आश्रव रूप नालों को रूंधकर कर्म रूप जो पानी है उसें तपस्या करिके निरजरा मयी मोरियों सें निकालते निकालते सर्व कर्म रहित होजाय जब उस ही जीव का नाम मोक्ष है निरमला हुवा इसलिये निरवाण और सर्व कार्य सिद्ध किये इस लिये जीवका नाम सिद्ध है, यह आठमां पदार्थ बंध ओलखानें को स्वामी श्री भीखनजीनें मेवाड़ देशान्तरगत नाथ द्वारे में सम्वत् १८५६ चैत्र सुद १२ शनिवार को ढाल जोडी

जिसका भावार्थ मैंने तुच्छ बुद्ध्यानुसार किया जिसमें कोई अ-शुद्धार्थ हो उस का मुझे वारंवार मिच्छामि दुकड़ं है ।

श्रा० जौंहरी गुलाबचंद लूणियां जयपुर

॥ इति अष्टम पदार्थ ॥

॥ अथ नवमां मोक्ष पदार्थ ॥

॥ दोहा ॥

मोक्ष पदार्थ नवमूं कह्यो । ते सघलां में श्री-कार ॥ ते सर्व गुणां सहित छै । त्यां सुखांरो छेह न पार ॥ १ ॥ कर्म्मां सूं मुंकाणा ते मोक्ष छै । त्यांरा छै नांम अनेक ॥ परमपद निरवाण नें मुक्ति छै । सिद्ध शिव आदि नांम विशेक ॥ २ ॥ परम पद उत्कृष्टो पामिया । तिण सूं परमपद त्यांरो नांम ॥ कर्म दावानलमेट शीतल थया । तिण सूं निरवाण नांम छै तांम ॥ ३ ॥ सर्व कार्य्य सिद्धा छै तेहनां । तिण सूं सिद्ध कह्या छै तांम उपद्रव करनें रहित हुवा । तिण सूं शिव कह्यो त्यांरो नांम ॥ ४ ॥ इण अनुसारे जाणि ज्यो । मोक्षरा गुण प्रमाणों नांय । हिव मोक्ष तणा सुख वर्णवूं । ते सुणों राखि चित ठांम ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोक्ष पदार्थ नवमां है सो सर्व पदार्थों में श्रीकार है सर्व गुण संयुक्त है और अनन्त सुख है जिसका पार नहीं है, कर्म्मों सें मूकाणा थानें कर्म्म रहित हुए इस सें मोक्ष कहा है परम कहिए उत्कृष्ट पद प्राप्त हुए इसलिये परमपद और कर्म रूप दावानल को भेद के शीतली भूत हुए इस वास्ते निरवाण नांम कहा है, सर्व कार्य्य सिद्ध किये जिस सें सिद्ध और उपद्रव रहित हुए इस लिये उन का नांम शिव है, इत्यादि गुण प्रमाणें अनेक नांम कहे हैं वे सिद्ध अनन्त सुखी हुए जिसका वर्णन् करते हैं ।

॥ ढाल ॥

पाखंड बधसी आरे पाचमें रे ॥ एदेशी ॥

मोक्ष पदारथ रा छै सुख सास्वतारे। त्यां सुखा री कद न आवै अंतरे। ते सुख अमोलक निज गुण जीवनां रे ॥ अनन्त सुख भाष्या श्री भगवंतरे ॥ मोक्ष पदारथ छै सारां सिरै रे ॥ १ ॥ तीन कालनां सुख देवतां तणां रे । ते सुख पिण इधका घणां अथागरे ॥ ते सुख सघलाही सुख इक सिद्धनां रे । तुल्य न आवें अनन्त में भागरे ॥ मो ॥ ॥ २ ॥ संसार नां सुख तो छै पुद्गल तणां रे । ते सुख निश्चय रोगीला जांणरे ॥ कर्मां वस गमता लागे जीवनें रे । तिण सुखां री बुद्धिवंत करो पिछांणरे ॥ मो ॥ ३ ॥ पांम रोगीलो हुवे तेहनें

रे । गमती लागै छै अत्यंत खाजरे ॥ एहवा रोगी-ला सुख छै पुन्य तणां रे ॥ तिण सूं कदे न सीझै आतम काजरे ॥ मो ॥ ४ ॥ एहवा सुखां सूं जीव राजी हुवै रे । तिण सूं लागै छै पाप कर्म पूररे ॥ पछै दुःख भोगवै नरक निगोदमें रे । मोक्ष सुखां सूं पड़िया दूररे ॥ मो ॥ ५ ॥ छूटा जन्म मरण दावानल तेहथी रे ॥ ते तो छै मोक्ष सिद्ध भगवंतरे । त्यां आठूं ही कर्मां नें अलगा किया रे । जब आठूं हीं गुण नीपनां छै अत्यंतरे ॥ ॥ मो ॥ ६ ॥ ते मोक्ष सिद्ध भगवन्त तो इहां ही हुवा रे । पछै एक समैं ऊंचा गया थेटरे । सिद्ध रहिवानुं क्षेत्र छै तिहां जई रह्या रे । अलोक सूं जाय अड़िया छै नेंठरे ॥ मो ॥ ७ ॥ अनन्तो ज्ञान नें दरशन तेहनुं रे । वलि आतमिक सुख अनन्तो जांणरे । खायक समकित सिद्ध बीतराग नें रे । अटल अवगाहनां छै निरवांणरे ॥ मो ॥ ॥ ८ ॥ अमूर्ति पणों त्यांरो प्रगट हुवो रे ॥ हलका भारी न लागै मूल लिगाररे ॥ तिण सूं अगुरू लघू नें अमूरती कह्या रे । ए पिण गुण त्यां में श्रीकाररे ॥ मो ॥ ९ ॥ अंतराय कर्म सूं तो

ते रहित छै रे त्यांनें पुद्गल सुख चाहिजे नांहिरे ॥ ते निजगुण सुख मांहि भिन्न रह्यारे । ऊणायत रही नहीं छै कांहिरे ॥ मो ॥ १० ॥ छूटा कलकलीभूत संसार थी रे । आठूं हीं कर्म्म तणां करि सोखरे ॥ अनन्ता सुख पाम्या शिव रमणीं तणा रे । त्यांनें तो काहिजे अवचल मोखरे ॥ मो ॥ ॥ ११ ॥ त्यांरा सुखां नें नहीं कोई ओपमां रे । तीनूं हीं लोक संसार मझारेरे ॥ येक धारा छैं त्यांरा सुख सास्वतारे ॥ ओछा अधिका सुख कदे न लिगारेरे ॥ मो ॥ १२ ॥ तित्थसिद्धा ते तीर्थ में सिद्ध हुवारे । अ तित्थसिद्ध विनतीर्थ सिद्ध थायरे ॥ तीर्थंकरसिद्धा ते तीर्थ थापनैंरे । अतीर्थंकर सिद्धा विनतीर्थ थापी त्हायरे ॥ मो ॥ १३ ॥ सयं बुद्धीसिद्धा ते पोतै समझनैंरे । प्रत्येक बुद्धी सिद्धा ते कांयक बस्तु देखरे ॥ बुद्ध बोही सिद्धा औरां कनैं समझनैंरे । उपदेश सुणि नें ज्ञान विशेखरे ॥ मो ॥ १४ ॥ स्वयं लिंगी सिद्धा साधुरा भेखमैं रे । अन्यलिंगी सिद्धा अन्य लिङ्ग मांहिरे । ग्रहलिङ्ग सिद्धा ग्रहस्थरां लिङ्गमें रे ।

स्त्री लिङ्ग सिद्धा स्त्री लिङ्ग मैं ताहिरे ॥ मो ॥ ॥१५॥ पुरुष सिद्धा ते पुरुष रा लिङ्ग मैं रे । नपुंशक सिद्धा नपुंशक लिङ्ग में सोयरे । येक सिद्धा समय में येकाहिज हुआरे । अनेक सिद्धा ते येक समय अनेक सिद्ध होयरे ॥ मो ॥ १६ ॥ ज्ञान दरशन चारित्र नें तप थकी रे । सघला हुवा छै सिद्ध निर्वाणरे । यांच्यारां विन सिद्ध कोई नहिं हुवारे । यह च्यारूंहीं मार्ग मोच्चरा जांणरे ॥ मो ॥ ॥ १७ ॥ ज्ञानथी जांण लेवै सर्व भावनैंरे । दर्शन सुं श्रद्ध लेवै स्वयमेवरे । चारित्र सुं कर्म रुकै छै आवतारे । तपकरी कर्म तोडै तत्लेवरे ॥ मो ॥ १८ ॥ यह पनरेही भेदै सिद्ध हुआ तिकेंरे । सघलारी करणी जाणों येकरे । वलि मुक्ती मैं सघलांरा सुख सारषारे । ते सिद्ध छै पनरें भेद अनेकरे ॥ मो ॥ १९ ॥ मोच्च पदारथ नैं ओलखायवारे । जोड कीधी छै श्रीजीद्वारा मझाररे ॥ सम्वत् अट्ठारे छप्पन्नां वर्ष मैंरे । चैत्र शुध चौथ शनिसर वाररे ॥ मो ॥ २० ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

जीव सर्व कर्म रहित होजाता है उसे मोक्ष कहते हैं, अर्थात् अनादि काल से तेल और तिल लोलीभूत जैसे जीव कर्म लोली

भूत, धातू मिट्टी लोली भूत जैसें जीव कर्म लोली भूत, घृत दूध लोलीभूत जैसें जीव कर्म लोलीभूत हैं, परंतु घाणियांदिक के उपाय सें तेल खल रहित होवै वैसें ही तप संयमादि उपाय से जीव कर्म रहित होय सो मोक्ष, झेरणादिक के उपाय सें घृत छाछ रहित होय वैसें ही जीव तप संयमादि उपाय सें कर्म रहित होय सो मोक्ष अग्नियांदि उपाय सें धातू मिट्टी अलग होय वैसें ही तप संयमादि उपाय सें कर्म रहित होय सो मोक्ष है, पुद्गलों का संगी होके जीव पंच इन्द्रियों की विषयों सें विषयी होनें सें शब्द रूप रश गंध और स्पर्श में रक्त होरहा है, निजगुनों को भूल कर परगुनों सें राच रहा है जिससें ज्ञानादि गुनों का लोप होके मिथ्यात प्रमाद कषायादि आश्रव द्वारों से कर्म ग्रहण करता है तब कर्मानुसार च्यार गति चौरासी लक्ष जीवायोनि में परिभ्रमण कर रहा है, जन्म मरण रूप दावानल मैं जल रहा है किन्तु भले परिणामों सें कभी मनुष्य जन्म पाके पुन्योदय सें आर्य देश उत्तम कुल निरोग शरीर पूर्ण इन्द्रियां और सद्गुरु का संयोग मिलनें सें या स्वतहः ही क्षयोपस्मानुसार श्रीजिन प्ररूपित धर्ममार्ग को जानकर संसार को अनित्य जानता है और प्रत्याख्यान प्रज्ञा सें सर्व सावद्य जोगों को त्याग कर निरारंभी निःपरिग्रही होता है तब तप संजमादि करिके पूर्व संचित कर्म खपाते खपाते क्षपक श्रेणि चढकर अनुक्रमें शुक्ल ध्यान सें तेरमें गुणस्थान मैं केवल अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान दरशन प्राप्त करता है फिर चौदमे गुणस्थान मैं वेदनी नाम गौत्र इन तीनों कर्मों को येकदम क्षय करके अंत समय में आयुष्य कर्म खपाके मोक्षपद प्राप्त करता है, अर्थात् सर्व कर्म रहित होके येक समय ऊर्ध्व गति कर लोकाग्र मैं विराजमान होता है वहां जीव सास्वता सुखी है उन सुखों का पार नहीं है वे सुख अमूल्य आतमींक निजगुन हैं उन सुखों को कोई औपमा नहीं है, परंतु समझाने के लिए दृष्टान्त देके कहा है गत काल में देव लोकों मे देवता हुए जिन्हों का सुख, वर्तमान में देवता है उनका सुख, और अनागत काल में जो देवता होंगे जिन्हों का सुख येकत्र करिके उन्हें अनन्तानन्त

वारंगणादे सिद्ध के सुखों से तुलना करे तो वे सुख उन आतमींक सुखों के अनन्तवें भाग भी नहीं है क्योंकि देवताओं के सुख तो पुदूगलीक अनित्य है और सिद्ध के आतमींक सुख सदा सर्वदा येकसा नित्य है, संसार के सुख तो पुदूगलीक और रोगीले हैं जैसें पाम रोगी को खाज अर्थात् कुचरना अत्यन्त अच्छा और मिष्ट लगें वैसें ही कर्म वस पुन्य के पुदूगलीक सुख जीव को अच्छे लगते हैं परंतु इन्ह सुखों सें आतमा का कार्य सिद्ध कदापि नहीं होता है, मोह कर्म वस पुदूगलीक सुखों सें जीव राजी होता है परंतु इन्ह सुखों में गृद्धी होके जीव पाप कर्मोपार्जन करि के नरक निगोदादि में दुःख भोगता है और मोक्ष के आतमींक सुखों सें दूर होता है इस लिए यह सुख कुछ भी नहीं है असल सुख तो मुक्तिके हैं सो सदा सर्वदा येकसा अनन्ते हैं सो जन्म मरणरूप दावानल सें अलग होके सिद्ध भगवन्त हुए हैं, जिन्होंनें आठूं ही कर्म अलग करिके आठ गुन प्रगट किये हैं सो कहते हैं।

१-ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होनें सें केवल ज्ञान।

२-दरशनावरणीय कर्म क्षय होने सें केवल दरशन।

३-वेदनीय कर्म क्षय होने सें आतमींक सुख।

४-मोहनीय कर्म क्षय होनें सें शीतली भूत स्थिर प्रदेश तथा क्षायक समकित।

५-नाम कर्म क्षय होने सें अमूर्तीक भाव।

६-गौत्र कर्म क्षय होने सें अगुरू लघू अर्थात् हल का भारी पणां रहित।

७-अंतराय कर्म क्षय होने सें अनन्त वीर्य अंतराय रहित।

८-आयुष्य कर्म क्षय होने से अटल अवगाहना।

उपरोक्त आठ गुनों सहित सिद्ध कर्मों सें मुकाये जिसका नांम मोक्ष है वे सिद्ध भगवंत कलकलीभूत संसार सें छुटकारा पाके

शिव रमणी के अनन्त सुख पाये हैं सो १५ प्रकार से सिद्ध होते हैं जिन्हों का नाम ।

१-तित्थ सिद्धा, अर्थात् साधू साध्वी श्रावक श्राविका मयी च्यार तीर्थ में से सिद्ध हुए ।

२-अण तित्थ सिद्धा, अर्थात् च्यारतीर्थ विना अन्य तीर्थी पणे में करणी करके केवलज्ञान दर्शन उपार्जन कर सिद्ध हुए ।

३-तीर्थंकर सिद्धा, अर्थात् तीर्थ थापके सिद्ध हुए ।

४-अ तीर्थंकर सिद्धा, अर्थात् तीर्थ थापे विना सामान्य केवली सिद्ध हुए ।

५-स्वयंबुद्धि सिद्धा, अर्थात् किसी के उपदेश विना स्वयं प्रतिबोध पाके सिद्ध हुए ।

६-प्रत्येक बुद्धि सिद्धा, अर्थात् किसी वस्तु को देख के प्रतिबोध पाये सो सिद्ध हुए ।

७-बुद्धिबोध सिद्धा, अर्थात् उपदेश सुनके संयम मार्ग अङ्गीकार करके सिद्ध हुए ।

८-स्वयं लिङ्गी सिद्धा, अर्थात् जैन साधू के लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

९-अन्य लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् जैन विना अन्य लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

१०-गृहस्थ लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् गृहस्थी के लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

११-स्त्री लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् स्त्री लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

१२-पुरुष लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् पुरुष लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

१३-नपुंसक लिङ्ग सिद्धा, अर्थात् कृतनपुंशक लिङ्ग में सिद्ध हुए ।

१४-एक सिद्धा, अर्थात् एक समय में येक ही सिद्ध हुए ।

१५-अनेक सिद्धा, अर्थात् एक समय में अनेक सिद्ध हुए ।

उपरोक्त पंदरह प्रकार सिद्ध हुए सो सर्व ज्ञान दरशन चारित्र और तप यह च्यारों सहित हुए हैं परंतु इन च्यारों के विना कोई भी सिद्ध नहीं हुए न होय और न होवेगा, ज्ञान से सर्व भ-

दार्थों का ज्ञान होता है, दरशन से सर्व पदार्थों का द्रव्य गुन पर्याय यथातथ्य श्रद्धता है, चारित्र से कर्म को रोकता और तप से कर्मों का क्षय करता हैं इसलिये यह च्यारों मोक्ष मार्ग है, पंदरह प्रकार से सिद्ध होते हैं उन सब की करणी एकसा है और सिद्ध स्थान में सर्व सिद्धों के एकसा ज्ञानादि गुन तथा आतमीक सुख एकसा है वहां किंचित् भी फर्क नहीं है, यह नवमां मोक्ष पदार्थ को ओलखाने के लिए स्वामी श्री भीखनजीनें नांथद्वारा शहर में सम्वत् १८५६ मिती चैत सुदि ४ शनिवार को ढाल जोडी जिसका भावार्थ मैंनें किया जिसमें कोई अशुद्धार्थ आया होय उसका मुझे बारंबार मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्रूटक छन्द ॥

कह्यो जीव धुर अरु दूसरो अजीव तत्व सुजानही। पुण्य तीसरो फुन पाप चौथो आश्रव पंचमूं मानही ॥ छट्टो पदारथ निरजरा अनें सातमूं संवर ग्रह्यो। आठमूं छै बंध फुनजे मोक्ष ते नवमूं कह्यो ॥ १ ॥ ए नव पदार्थ जे आखिया जिन भाषिया आगम महीं। तसु ढाल बंध सु जोड नींकी स्वामश्री भिक्षूकही ॥ तेहनुं भावार्थ मैं कियो निज बुद्धिके अनुसारही ॥ वच विरुद्धको आयो हुवै तसुं मिथ्या दुकृत धारही ॥ २ ॥ स्वर व्यंजनादिक अनें लघु फुन दीर्घ जे मात्रा

वही । कवि बाच के शुद्ध ग्रहणाकर तसु हांस्य मुफ्करस्ये नहीं ॥ ए प्रार्थना है वाचकों सें नम्र भावें जानही । गुनी आतम अर्थी तत्व समझी यथातथ्य सु मानही ॥ ३ ॥ श्रीवीर शाशन मांहि प्रगटे स्वामि श्रीभिक्षू सही । जिन आंण वर फुन बांधि शिरधर बिमल शिव मारग कही ॥ संसार पारावार तसु उपकार सावद्य दाखियो । जे ज्ञान दरशन चारित तपये धर्म निरवद्य भाषियो ॥ ४ ॥ तसु पाट अष्टम स्वाम कालूराम गणी महाराजही । सुरतरू सांचा मिष्ट बाचा तरन तारन जहाजही ॥ तेहनुं उपाशक गुलाब कहै यह अर्थ तासु पसायही । कियो सम्वतें उगनीस बहोतर आनन्द हर्ष अथायही ॥ ५ ॥

॥ उक्तंच ॥

नवसद्भाव पयत्था पणत्ता तंजहा जीव अजीवा पुन्नं पावं आसवो संवरो निज्झरा बंधो मोक्खो

॥ इति ठाणाङ्ग सूत्रम् ॥

अर्थ नवसद्भाव अर्थात् छुता पदार्थ प्ररूप्या ते कहै छे, जीवा १ अजीवा २ पुण्य ३ पाप ४ आश्रव ५ संवर ६ निरजरा ७ बंध ८ मोक्ष ९

॥ अथ श्रीअभयदेव सूरिकृतावृत्ति ॥

नवसद्भावे त्यादि । तद्भावेन परमार्थेना नुपचारेणे त्यर्थः पदार्थाः वस्तूनि सद्भाव पदार्थाः स्तद्यथा जीवाः सुख दुःख ज्ञानोपयोग लक्षणा, अजीवा स्तद्विपरीताः पुण्यं शुभ प्रकृतिरूपं कर्म, पापं तद्विपरीतं, कर्मैव आश्रूयते गृह्यते नेनेत्याश्रवः शुभाशुभ कर्मादान हेतु रितिभावः, संवर आश्रव निरोधो गुप्तयादिभि, र्निरजरा विपाका त्तपसोवा कर्म्मणां देशतः क्षपणा, बंध आश्रवै रात्तस्य कर्मणा आत्मना संयोगो, मोक्षः कृत्स्नकर्मक्षया दात्मनः स्वात्मन्यवस्थानमिति; ननु जीवाजीव व्यतिरिक्तः पुण्यादयो न संति तथा युज्य मानत्वा तथाहि पुण्य पापे कर्मणी बन्धोपि तदात्मकएव कर्मच पुद्गल परिणामः पुद्गलाश्चाजीवा इति आश्रवस्तु मिथ्या दर्शनादिरूपः परिणामो जीवस्य सचात्मानं पुद्गलांश्च विरहय्य कोन्यः संवरोप्याश्रव निरोध लक्षणो देशसर्वभेद आत्मनः परिणामो निवृत्तिरूपो निरजरातु कर्मपरिशाटो जीवः कर्मणां यत्पार्थक्य मापादयति स्वशक्त्या

मोक्षो ह्यात्मा समस्त कर्म विरहित इति तस्मा ज्जीवाजीवौ सद्भावपदार्थावितिवक्तव्य मतए-वोक्त मिहैव जद त्थिचणं लोए तं सव्वं दुप्पडयारं तंजहा जीवच्चेव अजीवच्चवत्ति अत्रोच्यते सत्यमे-तत् किंतु यांवेव जीवाजीव पदार्थों सामान्येनोक्तौ तावेवेह विशेषतो नवधोक्तौ समान्य विशेषात्म कत्वा द्वस्तुन स्तथेह मोक्षमार्गे शिष्यः प्रवर्त्त नीयो न संग्रहा भिधाने मात्रमेव कर्त्तव्यं सच यदैव मा-ख्यायते यदुता श्रवो बन्धो बन्धद्वारा यातेच पुराय पापे मुख्यानि तत्वानि संसार कारणा निसंवर नि-र्जरेच मोक्षस्य तदा संसार कारण त्यागे नेतरत्र प्रवर्त्तते नान्यथे त्यतः षट्कोपन्यासः मुख्य साध्य स्व्यापनार्थश्च मोक्षस्येतिः।

* भावार्थ *

नव प्रकार के पदार्थ कहे सो परम अर्थ करके अन उपचार सें तद्भाविक हैं अर्थात् कथन मात्र ही नहीं हैं छती बस्तु हैं सो कहते हैं जीव सुख दुःख का ज्ञाता उपयोग लक्षणी है १, अजीव सुख दुःख का अज्ञाता और अन उपयोग लक्षणी है २, पुन्य जीव के शुभ प्रकृति रूप कर्म है ३, पाप जीव के अशुभ प्रकृति रूप कर्म है ४, शुभाशुभ कर्मों का ग्रहण करने वाला आश्रव है ५, आश्रव का निरोध गुप्त्यादि संबर है, ६, देशतः कर्मों को क्षय करे सो निरजरा है ७, आश्रव द्वार सें कर्म प्रदेशा ग्रहण किये सो आत्म प्रदेशों के संयोग है अर्थात् आतम प्रदेशों के कर्म प्रवेशा बंधे हैं

सोपंध है ८, और सर्व कर्मोंको क्षय करके कर्म रहित आत्म प्रदेश है सो मोक्ष है ९, तव कोई तर्क करै तो फिर नव पदार्थ क्यों कहे जीव और अजीव ये दोही पदार्थ कहनेथे क्योंकि पुण्य पाप हैं सो कर्म है आतमां के साथ बंध है येतो पुद्गल परिणाम हैं और पुद्गल है सो अजीव है, तथा आश्रव है सो मिथ्या दर्शनादि रूप जीव परिणाम है सो आतमा जीव द्रव्य है, आश्रवका निरोध अर्थात् निवृत्ति रूप है, सो संवर है सोभी जीव द्रव्य है; देशतः कर्म तोडके देशतः जीव उज्वल होय सो निरजरा भी जीव पदार्थ है, तथा समस्त कर्मोंको क्षय करके स्व सक्ती प्रगट करी कर्म रहित जीव होय सो मोक्ष है सोभी जीव पदार्थही है इसलिए जीव और अजीव ये दोही सद्भाव पदार्थ है बाकी सातों को पदार्थ किसतरह कहे जिसका उत्तर शिष्यों को मोक्ष मार्ग में प्रवर्ताने के निमित् प्रथक प्रथक पदार्थ बताये हैं, अनादि काल से संसारी जीव पुद्गलों के साथ लोली भूत हो रहा है जो जीवके शुभ पर्यं उदय होते हैं उन्ह पुद्गलों का नाम पुण्य पदार्थ है और जो असुभ पर्यं उदय आते हैं उन्ह का नाम पाप पदार्थ है पुण्य पापका करता जीव है जिसको आश्रव पदार्थ कहते हैं और अकरता है सो जीव संवर पदार्थ है, जीव जब कर्मों को निरजरता अर्थात् देशतः क्षय करता है इसलिये जीवका नाम निरजरा है, और जो पुण्य पाप जीवके बंधे हैं उनका नाम बंध पदार्थ है, सम्पूर्ण पुण्य पाप को क्षय करके जीव कर्म रहित होता है उसका नाम मोक्ष पदार्थ है, तात्पर्य पुण्य पाप बंध और आश्रव यह संसार के कारण है इसलिये इन्ह तजके संवर निरजरा जो मोक्षके कारण है सो अङ्गीकार करना चाहिए ॥ इति ॥

॥ दोहा ॥

केई भेष धारयां रा घट मभें । जीव अजीवरी खबर न कांय ॥ सो पिण गोला चलावै गालां तणां । ते पिण शुद्ध न दीसे त्हाय ॥ १ ॥ सर्व

पदार्थांरो त्यां रै निर्णय नहीं । छ द्रव्यांरो पिण निर्णय नांहि ॥ न्याय निरणाय विना वकवो करे । त्यां रै सोच नहिं मन मांहि ॥ २ ॥ जीव अजीव दोनूं जिन कह्या । तीजी वस्तु न कांय ॥ जे जे वस्तु छै लोकमें । ते दोनूं में सर्व समाय ॥ ३ ॥ नव ही पदार्थ जिन कह्या । ते दोयां में घालै नांहि ॥ त्यां रै अंधकार घटमें घणों । ते भूल गया भ्रम मांहि ॥ ४ ॥ ऊंधी करै छै प्ररूपनां । ते भोलानें खबर न कांय ॥ तिणसूं नव पदार्थरी निरणाय कहूं । ते सुणज्यो चित ल्याय ॥ ५ ॥

॥ ढाल ॥

आ अनुकम्पा जिन आज्ञा में ॥ एदेसी ॥

जीवते चेतन अजीव अचेतन । त्यांनैं वादर पणैं तो ओलखणां स्होरा ॥ त्यांरा भेद जुदा जुदा करतां । जबतो ओलखणा छै अति दोहरा ॥ आ श्रद्धा श्री जिनवर भाषी ॥ १ ॥ जीव अजीव टालनैं सात पदार्थ । त्यांनैं जीवनैं अजीव श्रद्धै छै दोनूंहीं ॥ यहवी ऊंधी श्रद्धारा मूढ मिथ्याती । त्यां साधूरो भेषले आतम विगोई ॥ जीव अजीव शुद्ध न श्रद्धै मिथ्याती ॥ २ ॥

पुराय पाप बंध यह तीनूंहीं कर्म । ते कर्म तो निश्चय पुद्गल जाणों पुद्गल छै ते निश्चय अजीव । तिण मांहि शंका मूल म आणों ॥ पुराय पापनें अजीव न श्रद्धै मित्थ्याती ॥ ३ ॥ पुराय पाप वेहुं नें ग्रहै छै आश्रव । पुराय पाप ग्रह ते निश्चय जीव जाणों ॥ निरवद्य जोगांसूं पुराय ग्रहै छै । सावद्य जोगांसें पाप लागै छै आंणो ॥ आश्रवनैं जीव न श्रद्धै मित्थ्याती ।५। कर्म आवानां द्वार आश्रव जीवरा भाव । तिण आश्रवरा वीसूंही बोल पिछाणों ॥ तै बीसूंहीं बोल छै कर्मांरा करता । ते कर्मांरा करतानैं निश्चय जीव जाणों ॥ आश्रव ॥ ६ ॥ आतमा वस करै तेहिज संवर । आतमा वस करै ते निश्चयही जीव ॥ तेतो उपसम क्षायक क्षयोपसम भावः । अैतो जीवरा भाव छै निरमल अतीव ॥ संवरनैं जीव न श्रद्धै मित्थ्याती ॥ ७ ॥ आवता कर्मांनें रोकै ते संवर । आवता कर्म रोकै ते निश्चय जीव ॥ तिण संवरनैं जीव न श्रद्धै मित्थ्याती । तिणरै नरक निगोदरी लागै छै नींव ॥ संवर ॥ ८ ॥ देशः थकी कर्मां नें तोडै जब ।

द्वेरा थकी जीव ऊजलो होय ॥ जीव ऊ-
जलो हुओ तेहिज निरजरा । निरजरा जीव छै
तिणमें शंका न कोय ॥ निरजरा नें जीव न श्रद्धे
मित्थ्याती ॥ ६ ॥ कर्म्मां नैं तोडै ते निश्चयही
जीव । कर्म टूटां थकी ऊजलो हुओ जीव ॥
ऊजला जीवनैं निरजरा कही जिनेश्वर । जीवरा
गुण उज्वल है अतही अतीव ॥ निरजरा ॥ १० ॥
समस्त कर्म थकी मुंकावै । ते कर्म रहित आतम
छै मोख ॥ इण संसार दुःखां थी छुटकारो पाम्यो ।
तेतो शीतली भूत थया निदोंख ॥ मोक्षनैं जीव
न श्रद्धे मित्थ्याती ॥ ११ ॥ कर्म थकी मुकाणाते
मोक्ष । ते मुक्ति नें कहिजे सिद्ध भगवान ॥
वलि मोक्षनैं परम पद निरवाण कहिजे । ते नि-
श्चयही निरमल जीव छै शुद्धमान ॥ मोक्ष ॥१२॥
पुण्य पाप बंध यह तीनूं अजीव । त्यांनैं जीव
अजीव श्रद्धे छै दोनूंहीं ॥ यहवी ऊंधी श्रद्धारा
छै मूढ मित्थ्याती । त्यां साधूरो भेष ले आतम
विगोई ॥ पुण्य पापनें ॥ १३ ॥ आश्रव संवर
निरजरा मोक्ष । यह नियमांहीं निश्चय जीव
च्यारूंहीं ॥ त्यांनैं जीव अजीव दोनूं श्रद्धे छै ।

तिण ऊंधी श्रद्धा ले आतम विगोई ॥ श्रै च्यारूं ही जीव न श्रद्धे मिथ्याती ॥ १४ ॥ नव पदार्थ में पांच जीव कह्या जिन । च्यार पदार्थ अजीव कह्या भगवान ॥ ए नवों हीं पदार्थ नुं निरणय करसी । तेहिज समकित छै शुद्ध मान ॥ आ श्रद्धा श्री जिनवर भाखी ॥ १५ ॥ जीव अजीव ओलखावन काजैं । जोड कीधीपुर सहर मझारो । सम्बत् अट्ठावन बर्ष सतावनें । भादवा सुद पूनम बुद्धवारो ॥ नवहीं पदार्थरो निर्णय किजो ॥१६॥

॥ इति नवपदार्थ चोपाई सम्पूर्णम् ॥

॥ श्री जयाचार्य्य कृत ढाल ॥

प्रीत भिक्षू सें लागी रे । सुमति सखी मोय जागीरे ॥ लागी प्रीत भिक्षू थकीरे पडयोरे गंगोदधिसीर ॥ तसु वचना अ्रत छांडि नैं म्हारे कुंण पीवे कडवो नीर ॥ प्रीत ॥ १ ॥ अलिङ्गी मानूं नहीं रे नहीं मानूं भेषधार ॥ टालोकर सें काम नहीं । म्हारे परम पूज सें प्यार ॥ प्रीत ॥२॥ अन्त करण सहु-दुःख तणो रे । समकित चरण सुआथ ॥ पूज प्रसादे पामियां आयो रत्न चिन्तामणि हात ॥ प्रीत ॥३॥

ऊंडी तुझ आलोचनारे॥ प्रबल प्रतापी आप ॥ जिन मग मार्ग जमायवा कांई स्थिर मर्य्यादा स्थाप ॥ प्रीत ॥४॥ अष्टादश सोलै संयमीरे । साठ वर्ष संथार ॥ आवै छै संत आरज्यां कह्या चरम वचन-चमत्कार ॥ प्रीत ॥ ५ ॥ येक महुरतैर आंसैरे आया साधू दोय॥ दोय महुरतैर आंसैर कांई तीन साध्वियां जोय ॥ प्रीत ॥ ६ ॥ लोक वचन बहु इम कहैरे । आ अचरज वाली बात ॥ भादवा शुक्ल त्रयोदशी । कांई पण्डित मर्ण विख्यात ॥ प्रीत ॥ ७ ॥ ॥ इति ॥

॥ अथ श्री कालूगणी स्तवना ॥

॥ दारू दाखांकी ॥ दारू दाखां की म्हांरा छैल भंवरजी नें थोडीसी पाजे हे ॥दा॥ए चाल॥ होजी महांरा दीन दयालू कालूगणी गुण दरिया हो । निरमल नीर बीर बचना करि गहरा भरिया हो । पाखंड हरिया हो । पाखंड हरिया हो एतो भव दधि कीच बीच में पडिया हो। कर्म अघ जडिया हो ॥ १ ॥ जे भवी धीर सीर शाशन में थारै शरणैं तिरया हो । पांच महाब्रत धार सार

केई अणुव्रत धरिया हो। कारज सरिया हो ॥का॥ ते तो शिव रमणी प्रते वरिया कै वरिया हो। कुगुरु विशरिया हो ॥ २ ॥ टालोकर गुण शुन्य हीन पुण्य गण बाहर निसरिया हो। यह भव परभव में दुःख पामैं। ते सूंस विसरिया हो। निरलज गरिया हो ॥ निर ॥ ये तो शिव मग सेती दूरा टरिया हो। कुगति में रडिया हो ॥३॥ तुम रींज हुमायु स्वच्छ पच्छ सम आसा पूरण स्वामी हो। सारण वारण संत सत्यां री मेटण खामी हो। अन्तरयामी हो। अन्तर। ये तो विवध प्रकारे शास्त्रां नां गामी हो ॥ करण अमामीं हो ॥ ४ ॥ सेवग जनपैं कृपा करिके भव जल पार उतारो हो। भविजनरै मन आसा अधिकी कारज सारो हो। सीघ्र संभारो हो ॥ सीघ्र ॥ एतो गुलाबचन्द कहै। हर्ष अपारो हो। विडध तिहांरो हो ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ ढाल ॥

देशी राजा रिसालूका ख्यालकी ॥ जागो म्हारा सिंह सूरमा रावतो रिसालु ॥ एचाल ॥ रणी थांरो मही बिच जस रह्यो छाय। जस रह्यो

छाय अहो कालू गणी राय ॥ ग ॥ कीरति दिसाई जाई । मानूं राखी रहै नांहीं । भवी जन मन भाई ज्ञान बधाय ॥ गणी ॥ १ ॥ दीपै हद तनु दुती । इन्दू सें अधिक कूंती । सम दम खम युति तिमिर नसाय ॥ गणी ॥२॥ बिवध मर्याद वाद । रहो ध्रुव मिष्ट साद । गुन गिरवो अगाध । सागर अथाय ॥ गणी ॥ ३ ॥ इति ॥

॥ ढाल राग खंमाचमें ॥

गणी तोरा दरश सरश पर वारीजी ॥ ग ॥ कालू गणि राजा । भव दधि पाजा । गरीब निवाजा । जग जंस जाम्भा जहारीजी ॥ ग ॥ १ ॥ अष्टम् पटधर अज्ञान तिमर हर । विमल बुद्धिवर । ज्ञान बान सर सारीजी ॥ ग ॥ २ ॥ अनुत्तर खम दम । अतिशय जिनसम । निरुपम निर मंम रमंनिज भाव विचारीजी ॥ ग ॥ ३ ॥ षटतीश गुन युत । क्रान्ति रवी वत । अमृत वच संत । वांग्रत कुमति विडारीजी ॥ ग ॥ ४ ॥ हरण भ्रमण दुःख । करण वरण सुख । धरम परम मुख । सुलाब शरण तुम्म धारीजी ॥ ग ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

॥ श्रीः ॥

शुद्धाशुद्धपत्रम्।

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	वस्त्राभर्ण	वस्त्राभरण
"	"	स्त्रियादि	स्त्री आदि
"	१४	अन्तरगत	अन्तर्गत
२	८	सतगुरुवों का	सद्गुरुओं का
"	२०	हरागज	हरगिज
३	५	एकान्न	एकान्त
"	१६	वो	वे
४	१७	चतुरगति	चतुर्गति
"	२३	प्ररूपिता	प्ररूपित
"	२८	सद्रोगु का	सद्गुरुओं का
६	१	शुत्र	श्रुत
१०	२५	तीर्थंकरो न	तीर्थङ्करो ने
"	१७	प्राणी	प्राण
"	२६	दसमा	दशमा
११	२०	उत्राध्ययन	उत्तराध्ययन
१२	४	उनमद	उन्मत्त
"	१०	भेपधारीयों	भेपधारियों

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२७	किइ	किई
१४	१६	जिनहों	जिन्हो
१६	८	तेवीस	तेवीश
"	१०	आउषो	आऊषा
"	"	जीव	जीवै
२१	५	छेदेकः	छेदकः
"	१७	स्वयम्भः	स्वयम्भुः
"	१८	सह शरीरणोति	सह शरीरेणोति
२२	१	ह	है
"	११	वा नाम	जुवानाम
२३	२	उपस्मीयां	उपसमियां
२४	८	छदमस्थ	छद्मस्थ
२५	७	शरारि	त्वचा
२६	१४	द्व्यतः	द्रव्यतः
२७	३	ढालते	ढाल
"	४	द्व्यरा	द्रव्यरा
"	६	भगवाति	भगवती
२८	१७	तुटै	तूटै
३०	६	इन्द्रीयों	इन्द्रियों
३०	१६	सुवीर	शूरवीर

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	१७	संसारिक	सांसारिक
३१	१६	द्रव्य	द्रव्य
३३	१२	सें थाले	सथाले
३४	२४	अवकास	अवकाश
३८	२	जीव	जाव
"	११	द्रव्वा	द्रव्यां
३६	१०	रात्रि	रात्री
४३	६	पर्ण	पूरण
"	१२	पर्माणू	परमाणूं
"	२१	पर्माणू वो	परमाणु वो
"	२२	पर्माणू	परमाणु
४४	५	वसत्र	वस्त्र
"	१०	द्रव्पतः	द्रव्यतः
५१	११	आयुष	आयुष्य
"	२३	वजर समान	वज्रसमान
५२	१४	सुश्वर	सुस्वर
"	१५	प्रमाणिक	प्रामाणीक
५२	१८	यसवंत	यशवन्त
५३	८	कीया	किया
"	१३	उपाना	उपाङ्ग

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२६	बंयालिस मैं	पयांलीसेंसे
५४	११	उच्य	उच्च
५७	१५	वान्छा	वान्छा
५८	१६	निवध	निर्वध्य
५६	४	संसारिक	सांसारिक
,,	,,	अपेचाय	अपेक्षा
,,	६	चक्रिवर्त की	चक्रवर्त्तिकी
,,	२४	हुकुमाता	हुकुमता
६०	६	असास्वते	असास्वत
,,	१०	निर्वध	निर्वद्य
,,	११	आसा	आशा
,,	१३	अदवसायों से	अध्यवसायोंसे
,,	१५	स्वतह	स्वतः
,,	१६	पुन्योपारजन	पुण्योपार्जन
,,	१८	निर्मिला	निर्मल
,,	२१	नाथाद्वारा	नाथद्वारा
६१	६	जै नरा	जैनरा
६२	८	नागसें विमुल	मार्गसें विमुख
,,	१०	अप्यकाय	अप्पकाय
६३	१	हा	हो

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	,,	निपजै	नींपजै
,,	१३	अगार	आहार
७०	३	करकस	कर्कश
७०	१३	अकरकस	अकर्कश
६३	१५	ती जाठाणा	तीजाठाणा
६६	२४	अव्ययन	अध्ययन
७०	२१	शर्ल	सरल
७२	१०	त	ते
७६	१२	जिनमात	जिनमति
७७	१५	पुन्योपारजन	पुण्योपार्जन
,,	१६	सतपुरुप	सत्पुरुष
,,	१७	निरगुणी	निर्गुणी
,,	२८	पुन्योपारजन	पुण्योपार्जन
७८	३	कत्तव्य	कर्त्तव्य
७८	८	सा	सो
,,	१२	निरवद्य	निर्वद्य
,,	१३	जलद	जल्द
८०	११	तेहआाहि	तेहवाही
,,	१८	परयाय	पर्याय
८४	८	विर्य	वीर्य

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१६	मनपर्यव	मनःपर्यव
८५	६	यो	सो।
,,	२६	उपस्प	उपसम
८६	१	प्रावर्त्या	प्रवत्र्या
,,	२०	कुकरमी	कुकर्मी
,,	३१	सिफ	सिर्फ
६५	११	परणाम	परिणाम
६६	१०	आश्रव	आश्रव
१००	४	न्यूतन	नूतन
१०५	२	स्मपूर्ण	संपूर्ण
,,	२२	प्रवर्त्तना	प्रवर्त्तना
१०६	६	निसहाय	निस्सहाय
१०६	२६	न्यूतन	नूतन
१०६	२८	समपूर्ण	संपूर्ण
१०६	२	जोगविर्य	जोगवीर्य
,,	१३	उपारजन	उपार्जन
,,	१५	,,	,,
,,	१६	,,	,,
,,	२३	,,	,,
११०	१२	विर्य	वीर्य

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१६	चोरी	चोरी
११५	११	आतम	आत्म
,,	१९	आतमा	आत्मा
११६	१०	श्रोत	श्रोत्र
१२१	३	निरवध	निर्वद्य
१२५	२	आतम	आत्म
,,	११	प्रसस्त	प्रशस्त
,,	११-१२ १४-१७	अप्रसस्त	अप्रशस्त
,,	२२	प्राक्रम	पराक्रम
,,	२४	करता	कर्त्ता
१३०	१	आतम	आत्म
,,	३–८	तात्पर	तात्पर्य
१३४	७	तत्पर	तात्पर्य
१४१	४–६ १९-२१	निरवद्य	निर्वद्य
,,	२४	पदारथ	पदार्थ
१४६	३	क्षयोपम्म	क्षयोपशम
१४७	१३	उत्पत	उत्पत्ती
१४८	२७	ब्रह्मन	ब्राह्मण
१५२	२०	भोगेव	भोगवे

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	१५	क्रुया	क्रिया
१६५	१६	सवर	संवर
१६६	६	सेयणा	सेवणा
"	६	निःफल	निष्फल
"	१७	वाह्यं	वाह्य
"	१८	अभ्यन्तर	आभ्यन्तर
१७१	३	सत्कारं	सत्कार
१७२	६	आरत	आर्त्त
१७५	५	निरवाण	निर्वाण
"	१८	लघूसंसारी	लघुसंसारी
"	२०	छिण	क्षण
१७६	८	बुधानुसार	बुद्धयानुसार
१७७	१७	प्राक्रमी	पराक्रमी
"	१६	आछादित	आच्छादित
१८८	२	ऊंणायत	ऊंणायत
१६०	१६	स्वतहः	स्वतः
"	१८	निःपरिग्रही	निष्परीग्रही
"	२६	आतमींक	आत्मिक
"	२७	औपमा	उपमा
१६१	१	आतमींक	आत्मिक
"	३	पुदगलीक	पुद्गलिक
"	"	आत्मींक	आत्मिक.
"	७	इन्ह	इन
१६३	५	आतमीक	आत्मिक

जय करुणाकर जय गजरक्षक जय रामानुज कृष्ण हरे,
जय मधुसूदन दैत्यविदारण विश्वविमोहन विश्वपते ।
जय भवतापनिवारण ईश्वर जय वामन जय भक्तिरते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥२॥
जय परमामृतमङ्गलदायक पङ्कजलोचन विश्वपते,
जयजय राम सुदर्शन, रक्षक जय विश्वम्भर भद्रपते ।
जय नारायण विश्वपरायण सकलसुखालय शान्तिमते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥३॥
जय अविनय जय शेषनिवासक मुनिजनसाधन साधुपते,
जय गोपीजनवल्लभ व्यापक जय कमठक जय वेदकृते ।
जय उद्धव प्रिययोग परायण जयधरणीधर प्राणपते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥४॥
जय राधावर गोवर्द्धनधर जय नरसिंह गुणाधिपते,
जय वंशीधर जय सङ्कर्षण परममनोहर भावकृते ।
जय हृषीकेश जयाच्युत विठ्ठल मीनचतुर्भुज दीनपते,
जयजय पतितोद्धारण श्रीधर भक्त० ॥५॥

श्रीधरस्वामि विरचितम् ।

—:0:0:0:—

प्रार्थना

(राजभक्तैर्हिन्दुभिः प्रातः प्रातः सन्ध्योत्तरं पठनीया)

धर्मो यतो जगदधीश ! ततः सदा त्वं
भूतिर्जयश्च सततं हि ततो यतस्त्वम् ।
धर्माय युद्ध्यति चमूर्नृपराजभक्ता
तस्यै जयं परमकारुणिक ! प्रयच्छ ॥

"सरस्वती श्रुतिमहती न हीयताम्"

जयति भक्तसमीहितसाधकः सकलविघ्नहरो गणनायकः ।
अपि जगत्त्रयनिर्मितिशिल्पिना प्रथममेव नुतः परमेष्ठिना ॥१॥

श्रीविष्णुगीतिस्तवः

जय गोपालक जय गरुडध्वज जय माधव वैकुण्ठपते,
जय गोविन्द जनार्दन यादव जय केशव जय भक्तिनिधे ।
जय दामोदर जय पुरुषोत्तम जय कंसान्तक लक्ष्मिपते,
जय जय पतितोद्धारण श्रीधर भक्तजनप्रतिपालकृते ॥१॥

यो वीक्षणप्रणयधारिनृणां द्वितीया-
तिथ्याश्रयं जयपुरोदयसानुपत्तः ।
सायं हि दृक्पथमुपैत्यनुमासमेव
"रत्नाकरः" किल सुधाकरसाम्यमेति ।४।

प्रत्येकशुभ्रशुचिलेखमयूखतोऽयं
वर्षन्सहर्षममृतं सततं मनुष्यान् ।
आनन्दयन् सरस संस्कृतशब्दपूर्वो
'रत्नाकरः' किल सुधाकरसाम्यमेति ।५।

यस्यातिशुद्धतरलेखमयान्मयूखान्
वीक्ष्यैव पाठकमनश्चलचन्द्रकान्ताः ।
निष्यन्दितुं प्रणयवारिभिरारभन्ते
'रत्नाकरः' किल सुधाकरसाम्यमेति ।६।

ज्योत्स्नामतीवविमलस्वयशःस्वरूपां
विस्तारयन्नखिलभूवलये सलीलम् ।
आनन्दयन्नथ च विज्ञवरान् रसज्ञान्
'रत्नाकरः' किल सुधाकरसाम्यमेति ।७।

विद्यार्णवाद्गिरिधरैर्मथुरादिभिश्च
सम्पादकाऽमरवरैरुपपाद्यमानः ।
भूमण्डले सरससंस्कृतशब्दपूर्वो
'रत्नाकरः' किल सुधाकरसाम्यमेति ।८।

भवदीयो
जयपुरवास्तव्यनामावलोपनामको
हरनारायणशर्मा दाधीचः ।